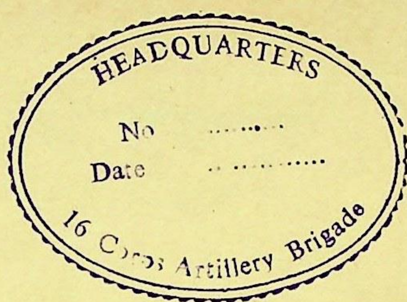
सरदार माने सरदार

સરદાર એટલે સરદાર



ગુણવંત શાહ

गुणवंत शाह


HEADQUARTERS
No
Date
16 Corps Artillery Brigade

सरदार माने सरदार

डा० गुणवंत शाह

अनुवाद
डॉ० भानुशंकर मेहता



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

SARDAR MANE SARDAR

Biography

Sardar Vallabha Bhai Patel

by

Dr. Gunwant Shah

1985

प्रथम संस्करण : १९८५ ई०

मूल्य : पन्द्रह रुपये

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी

मुद्रक

शीला प्रिण्टर्स, लहरतारा, वाराणसी

आदरणीय मित्र

रामलाल पारीख

को

सप्रेम भेंट

रुद्रभद्र सरदार

सरदार वल्लभभाई पटेल के जीवन कर्तव्य और जीवन विकास पर जितनी विवेचना होनी चाहिए थी उस प्रमाण में अब तक नहीं हुई है। उनके जीवन प्रकिया की बाबत पुस्तकों का अवलोकन करने पर ज्ञात होगा कि इनमें से अधिकतर पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में लिखी गयी हैं। इन ग्रन्थों में सरदार साहब के जीवन के सात से आठ वर्ष के क्रिया-कलापों की बाबत विस्तार से घटना-क्रमों का विवरण पढ़ा जा सकता है। इनमें के राजनीतिक प्रसंगों का यश गान भी हुआ है। ऐसा करते हुए सरदार के विकासक्रम के, उनके हृदय की ऋजुता के, हृदय के कोमल भावों को प्रकट करने वाले कितने ही सुन्दर पक्षों पर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। अस्तु कुछ भ्रमों की वजह से कहीं कहीं भारी अन्याय भी हुआ दिखायी पड़ता है। इस दृष्टि से एक या दो बड़े, सविस्तार, तटस्थ, तुलनात्मक जीवन चरित्रों की आवश्यकता है। ऐसे लेखक के लिए सहायक हो सकें ऐसे बारडोली और विलीनीकरण के दो पक्षों की बाबत डॉ० गुणवंत भाई शाह जैसे नूतन दृष्टि से विचार करने वाले महानुभाव ने बहुत-सी अध्ययनपूर्ण जानकारियाँ प्रदान की हैं और इनकी कीमत जितनी भी आँकी जाय कम ही होगी।

विश्वास करेंगे! सरदार साहब पर गुजराती भाषा में सविस्तार जीवन-चरित्र केवल एक है, वह है श्री नरहरिभाई परीख का। यह अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं से भरपूर है तो भी उनके बाद इनके बारे में लिखने वालों ने पूरा ध्यान नहीं दिया है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। श्री महादेव भाई जीते रहते तो सरदार की जीवनी जरूर लिखते और ऐसी एक सूचना भी मिलती है। पर वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहे, यह दुर्भाग्य ही माना जायगा।

किसी की जीवनी लिखी जाती है तो आरम्भ में पिता तथा पितामह की बाबत थोड़ी-सी ही सही पर ठोस जानकारी तो रहती ही है। गुजरात की

इतनी सारी युनिवर्सिटियों में, इतिहास विभागों के विद्वानों ने सरदार साहब के पिता झवेरभाई की बाबत इतिहास के प्राचार्य या विद्यार्थी द्वारा अभी पूरी शोध नहीं करायी है। नरहरि भाई की पुस्तक में एक तथ्य है कि झवेर भाई सन् १८५७ के बलवें में, या तो उसमें सक्रिय थे या किसी अन्य प्रकार से उसमें भाग लेने चल पड़े थे। उसमें झाँसी की रानी का और साथ ही होलकर के राजा का भी उल्लेख आता है। '१८५७' पर विगत दस-पन्द्रह वर्षों में, उस समय यहाँ रहते अंग्रेजों के, इंग्लैंड में भेजे पत्र, नाना साहब द्वारा बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को लिखे गये पत्र, ऐसी पुष्ट सामग्री इकट्ठी करके तीन-चार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए है। तो हम यहाँ पूर्व में स्थित होलकर राज्य के दस्तावेजों की शोध करें, जो महाराज शतरंज खेलते थे, वहाँ झवेरभाई हाजिर रहते, वे उनके कैदी थे, फिर मेहमान बने—तो इस बाबत कोई भी जानकारी प्राप्त करने का अब तक कोई प्रयास नहीं हुआ है, यह बड़े दुःख की बात है। यों भी देखें तो यह कुटुम्ब यहाँ कब आकर बसा, सरदार कब पैदा हुए इनके बारे में भी हमें जानकारी नहीं है। ऐसी परिस्थिति हो और उसमें कोई विस्तृत जीवन-कथा लिखने को तैयार होगा ऐसी आशा करें तो वह बेकार ही होगी।

ऐसी सामग्री इकट्ठा हो, तब ऐसे भाषण, आलेख तथा मणिबहन द्वारा प्रकाशित किये गये अनेक अति महत्त्वपूर्ण पत्र बहुत काम आयेंगे यह निर्विवाद बात है। ऐसा अब जल्दी होगा इसकी आशा कर सकते हैं और ऐसे कार्य में गुणवंत भाई सरदार के प्रति अपनी लगन और इतिहास के प्रति अपनी जलन लेकर एक महत्त्व का काम अपने सिर ले सकते हैं ऐसी भी आशा रख सकते हैं।

सरदार साहब के देशसेवा कार्य में बहुत कीमती अंश और उस अंग के संस्कारों के विकास के कारणों में पिता का भाग महत्त्वपूर्ण है। इनमें धार्मिक संस्कार शोध करने योग्य हैं। गांधीजी को उन्होंने गुरु माना पर वैदिक युग से गुरु की व्याख्या जिस प्रकार बदलती रही हैं उसमें कुलार्णव तन्त्र में जिन छ प्रकार के गुरुओं ने अदा की, १८५७ से १९०० तक की पढ़ाई-लिखाई में एक

गुरु ने जो महामन्त्र सिखाया कि 'अन्दर-अन्दर पढ़ लो' उसका सार समझकर, उपदेश ग्रहण कर, आगे बढ़ने का जो गुणधर्म उनमें विकसित हुआ, उसे आत्मसात कर उन्होंने अपनी जन्मजात सूक्ष्म दृष्टि से कितना कुछ विकसित किया, इसका भी अध्ययन करना जरूरी है। इन जन्मजात गुणों में सरदार की सूक्ष्म दृष्टि की बाबत डॉ० गुणवन्त भाई ने अच्छा विश्लेषण किया है। सामने खड़े आदमी को वेधक मनोदृष्टि से देखकर तत्काल उसकी पूरी कैफियत जान लेने की शक्ति, इस अद्‌भुत शक्ति द्वारा सामने खड़ा आदमी किस कारण उनके पास आया है, यह उनका पारखी मन पूछे इससे पहले वे उसका उत्तर दे देते थे। ऐसे अनेक प्रसंगों के हम साक्षी हैं। उनके ऐसे गुणों की बाबत विस्तृत विवेचन हो यह जरूरी है। दादा धर्माधिकारी ने उन्हें रुद्र-भद्र की उपमा दी वह सार्थक है। ऐसे शक्तिसम्पन्न लोग विरले ही होते हैं, तो भी उनके जमाने के और बाद के लेखक उन्हें 'लौह पुरुष', 'लोखंडी पुरुष' कहकर अपना अज्ञान व्यक्त करते लज्जित नहीं होते।

यह भाषण कुल तीन खण्डों में विभाजित है। बारडोली सत्याग्रह की बाबत बमुश्किल एक या दो विस्तृत आलेख मिलते हैं, अस्तु यह एक उपयोगी खंड है। दूसरा अति प्रख्यात 'भारत के नक्शे को आकार मिला' नामक खण्ड है और 'वज्रादपिकठोराणि मृदुनिकुसुमादपि' तीसरा खण्ड है। इसमें सरोजिनी नायडू की "लोहे की डिब्बी में सोने का गहना" की उक्ति यथोचित पोयेटिक, काव्यमय नहीं हैं। नायडूबहन अंग्रेजी में कविता लिखती थीं, उन्होंने संस्कृत का शब्दकोश पलटा होता तो 'वज्र' शब्द के सात-आठ अर्थ मिल जाते। 'वज्र' माने लोहा तो नहीं होता। इन्द्र के युग में तलवार नहीं थी, खड्‌ग या वज्र थे। वज्र के दूसरे अर्थ भी हैं। पर यह चर्चा यहाँ यथास्थान नहीं है। 'लोहे' के बदले उन्होंने 'वज्र' शब्द का प्रयोग किया होता तो अच्छा होता। सरोजिनी देवी जीती होतीं तो मैं उन्हें 'सोने की डिब्बी में प्लेटिनम या हीरे का गहना' जैसी उपमा सुझाता। यह तो मैं बात-बात में सरदार साहब के नाम के साथ 'लौह' शब्द का प्रयोग करने वालों ने किस हद तक इसका दुरुपयोग किया है

यह बताने हेतु ही टिप्पणी कर रहा हूँ। पुनः पुनरुक्ति समेटकर कहता हूँ कि सरदार दादा धर्माधिकारी के शब्दों में 'रुद्र-भद्र' पुरुष थे। रुद्र रोये थे तो आँखों से लहू बहा था, अग्नि नहीं। ऐसे भद्रपुरुष सरदार के सुकोमल हृदय का अनुभव बहुत कम लोगों को हुआ है; कारण यह कि वे हमेशा कार्यव्यस्त रहे। पर जिनको हुआ है वे कभी उनके सन्दर्भ में 'लौह पुरुष' शब्द नहीं प्रयुक्त कर सकेंगे, नहीं सह सकेंगे। चरोतर में जिन पाँच-सात गाँवों में उनकी प्रतिमा स्थापित हुई है वहाँ अज्ञानवश 'भारत के लौह पुरुष' ऐसा चालू पद्धति के अनुसार उत्कीर्ण कर दिया गया है, यह ठीक नहीं है, पर अब हो भी क्या सकता है ?

अभी तो अच्छे भले लोग भी, सरदार ईश्वरपरायण थे ऐसा मानने को भी तैयार नहीं हैं। उनके सन्मित्र रावजीभाई, हरिहरिभाई और दादा धर्माधिकारी की गवाही है। सरदार ने अपनी जेल डायरी में, नित्य सुबह जल्दी उठकर प्रार्थना करते थे, ऐसा अपनी निजी हस्तलिपि में लिखा है, फिर भी लोग शंका उठाते ही रहते हैं। ऐसी दैवी संपत्ति धारण करनेवाले को इन्दिराजी ने 'वेस्टर्न कैपिटलिस्ट' भी कहा। मृत्यु के बाद पूरे तीन सौ रुपये भी न छोड़ जानेवाले को यह अंजलि ! ईर्ष्या दृष्टि किस हद तक हरे को पीत बताती है।

अफवाह उत्पादक वृत्तिवाली प्रजा को तो निन्दा में रस मिलता ही है। निष्काम कर्म करनेवाला कर्मयोगी अंतिम अवस्था में दूसरों से क्रिया कराता रहता है। इस कर्म क्रिया के सूक्ष्म भेद का निरूपण करने वाला, ईश्वर में [चिद् या परा या ब्रह्म की ईश शक्ति जो भी नाम दें वह] अखण्ड श्रद्धा रखने वाला यह व्यक्तित्व कितना प्रबल था इसकी प्रतीति कराने हेतु सरदार साहब द्वारा लिखे गये असंख्य पत्रों का तुलनात्मक अध्ययन उनका जीवन वृत्तांत लिखने में, तथा ऐसे भाषण मार्ग-दर्शक सिद्ध होंगे इसमें संदेह नहीं। उनका पत्र-साहित्य बहुत विलंब से प्रकाशित हुआ—इसे प्रगट करने के लिये भी मणिबहन की निंदा हुई—उन्होंने राजकीय अपराध किया यहाँ तक आरोप लगाये गये। ऐसी परिस्थिति में दूसरे किसी को समेटे बिना सरदार साहब का एक विस्तृत जीवन

चरित्र गुणवंत भाई लिखें या लिखवायें ऐसी विनम्र सूचना के साथ उनके इस सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ऐसे तीन पंखोंवाले प्रवचन का हम स्वागत करते हैं : वे इस दिशा में अध्ययन चालू रक्खे, नये सिरे से विचार करें और अपनी सूक्ष्म शैली से बहुमूल्य जानकारी प्रदान करें ऐसी अपेक्षा रक्खें तो अन्यथा नहीं होगा। अभी हाल मे श्री जयप्रकाश के जीवन विकास पर एक दमदार ग्रंथ प्रगट हुआ है। इसमे भी सरदार पर हुए अन्याय का निवारण करते लेख हैं। गुणवंत भाई ने इसका उपयोग किया हो है पर अभी तो कितनी ही और सामग्री मिलती जायगी। इन सबका समग्र अध्ययन करके एक नहीं, दो या तीन जीवन चरित्र लिखे जायं यह आवश्यक है। पुनः एक बार इस सुन्दर कृति के लिये मैं उनका अभिनंदन करके विश्राम लेता हूँ।

१४-१२-८२

चद्रवदन मेहता

प्रस्तावना

अमेरिका की मिशिगन युनिवर्सिटी [एन आर्बर] में सन् १९६७-६८ में जब मैं प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुआ तो मन ही मन ऐसा संकल्प लिया कि गांधीजी की बावत ऐसे लेखकों की पुस्तकें पढूंगा जिन्होंने गांधी विचार की कंठी न पहनी हो और जिनके विचार से गांधी एक व्यक्ति विशेष है, 'बापू' नहीं हैं। पहले पढ़ी विन्सेण्ट शीन की पुस्तक 'लीड काइण्डली लाइट' फिर लुई फिशर की लिखी जीवनी पढ़ी। तभी मेरे अमेरिकन मित्र किम सीबली ने सुधीर घोष की पुस्तक 'गाँधीज़ एमीसरी' पढ़ने को दी। यह पुस्तक तो गांधीजी को 'बापू' कहने वाले युवक की थी। फिर तो प्यारे लाल की 'द लास्ट फेज़' के दोनों भाग पढ़ गया। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' पढ़ने के बाद उसके उत्तर के रूप में पाकिस्तान में लिखी गयी पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम : द अदर साइड' भी पढ़ने को मिली। छुटपन के दिनों में घर में आज़ादी की हलचल का वातावरण रहता था अतः गुजराती में गाँधीजी सम्बन्धी साहित्य पढ़ा अवश्य था पर समझ बूझकर पढ़ने का अधिकतर काम अंग्रेजी में और वह भी अमेरिका में ही हुआ ऐसा मान सकते है। इन वर्षो में भूदान आंदोलन की बाढ़ लौट रही थी। १९५४-५७ के वर्षों के बीच इस आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़े होने के कारण उसकी असफलता मेरे मन को विक्षुब्ध करने वाली थी। यह एक ऐसा आंदोलन था जिसके कारण गाँधी विचारधारा को उत्तर-गाँधी युग में एक नया आयाम मिला था। अमेरिका प्रवास के दौरान दो बातें मन में बस गयीं :

१. गाँधी साहित्य पढ़ने के कारण ऐसा लगा कि गाँधी जैसे विराट अस्तित्व के बृहद पुंज में सरदार-नेहरू जैसे छोटे कोष्टक सभा गये यह सही है पर गाँधी की सफलता में इनका अवदान छोटा मोटा नहीं माना जा सकता।

२. विनोबा जी महाराष्ट् की पंडित परंपरा और संत परंपरा के संगम समान अवधूती स्वभाव के चिंतक थे अर्थात् विचारों को आरोपित करते चले जाते पर फसल के बारे में अनकरीब लापरवाह थे। आंदोलन को नेहरू जैसे संवेदनशील और जयप्रकाश जैसे आदर्शवादी मिले पर धरती की महक से यथार्थ दृष्टि वाले तो सरदार ही मिले।

यह तो अभिप्राय का क्षेत्र है अतः प्रमाणित मतभेदों के लिये अवकाश तो होगा ही। बड़ौदा म्यूनिसिपल कार्पोरेशन द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित सरदार व्याख्यान माला में भाषण देने का निमंत्रण मेयर श्री डॉ० जतीन भाई मोदी ने दिया तब जी में आया कि सरदार के महान अवदान की बाबत गवेषणा करने का मौका मिलेगा। भाषण तैयार करने के लिये सरदार के बारे में ठीक-ठीक पढ़ने का अवसर मिला और इससे सरदार की बाबत मेरा आदर अधिक दृढ़ हुआ। दूसरे भाषण के लिये सरदार वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय स्मारक की ओर से मुरब्बी बाबू भाई जसभाई पटेल का आमंत्रण मिला तब तक तो मेरा आदर अहोभाव में बदल गया था ऐसा कहूँ तो चलेगा। उनकी बाबत पोथियाँ ही पलटकर मैं बैठा न रहा। सरदार के निकट सम्पर्क में आये महानुभावों से मिलकर कितनी ही 'अन्दरूनी' बातें जानकर सरदार को समझने का प्रयत्न भी सरदार के व्यक्तित्व पर नया ही प्रकाश डालने वाला सिद्ध हुआ। डुमस में मोरारजी भाई के साथ जो वार्ता हुई उसमें से एकाध बातें ही मैंने भाषण में कही हैं। अन्य कितनी ही बातें ऐसी हैं जो आदरणीय मोरारजी भाई की अनुमति बिना मैं प्रकाशित नहीं कर सकता। बारडोली स्वराज आश्रम के मुरब्बी उत्तम चंद्र शाह ने बातचीत के दौरान मजेदार घटना बतायी। बारडोली की लड़ाई के समय कहीं लोगों की ओर से लगान वसूल करने वाले कारिन्दों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दुर्गत होती थी तब कार्यकर्त्ता सरदार से फरियाद करते थे कि यह गाँधी की अहिंसा नहीं है। सरदार उनसे कहते : 'भाइयो ! बापू की अहिंसा तक हम नहीं पहुँच पायेंगे। हमें समझ में आवे और हजम हो सकें

उतनी अहिंसा का पालन करना चाहिये और उनकी अहिंसा का आदर्श सम्मुख रखना चाहिये ।'

स्वराज्य मिला उसके पूर्व के वर्षों में मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने अखंड भारत के भोले और इस्लाम परस्त मुसलमानों के मन में जहर बोने का काम किया था । उन्होंने तो जाहिर किया था कि या तो भारत के टुकड़े होंगे या फिर वह समाप्त हो जायगा । इस्लाम या मुसलमानों के नाम पर अलग पाकिस्तान मांगने की जिन्ना की पात्रता की बाबत 'फ्रीडम एट मिडनाइट' में जो बात लिखी है उसका उल्लेख कर दूं । उसमें बताया गया है, पाकिस्तान के फरिश्ता दारू पीते थे, मस्जिद में कभी कदाच् ही जाते थे, और कुरान की उपेक्षा करते थे । इस प्रकार देखें तो वास्तविकता यह है कि इस्लाम के साथ जिना को खास कुछ लेना देना नहीं था । इसके बावजूद अखंड भारत के भोले भाले मुसलमानों को वे धर्म के नाम पर उत्तेजित कर सके और उनके उन्मादी समर्थन से अलग पाकिस्तान प्राप्त कर सके । मुस्लिम लीग के ठीकेदार हर शहर में उठ खड़े हुए ।

गाँधी, नेहरू, और सरदार के नेतृत्व के अंतर्गत कांग्रेस ने हिन्दूमुस्लिम एकता के लिये पूरा प्रयत्न किया । गांधीजी की सर्वधर्म प्रार्थना में कुरान की जो आयत पढ़ी जाती थी वह विद्यार्थी के रूप में हमने भी कण्ठस्थ कर ली थी और वह मुझे आज भी ठीक-ठीक याद है । विनोबाजी जैसे लोगों ने तो पवित्र कुरान का गहन अध्ययन किया था और मौलाना आज़ाद ने उन्हें 'हाफिज़' कहा । परंतु सुगन्ध की अपेक्षा दुर्गन्ध ज्यादा जल्दी फैलती है, उसी प्रकार सद्भावना के प्रसार के स्थान पर परस्पर अविश्वास का फैलाव तेज़ी से हुआ और हिन्दू के टुकड़े होकर ही रहे । विभाजन हुआ और तुरत ही जिन्ना तो पाकिस्तान चले गये और अन्य लीगी नेता भी गये । इस तरह भारत में रह गये मुसलमानों को वे अकेले पड़ गये हैं ऐसा लगने लगा । इस प्रकार एकाएक नेताविहीन होने का अनुभव करते अनेक मुसलमानों का एक प्रतिनिधि-मंडल मौलाना आजाद से मिलने गया तब मौलाना ने जिन्न का समर्थन करने के लिये उनकी भर्त्सना की

पर दूध तो ढुलक चुका था। हमारे राँदेर गाँव में हिन्दू-मुसलमानों की बस्ती बराबर की थी। लोग आराम से मिलजुलकर रहते थे। मस्जिद में से पाँच वक्त सुनाई पड़ती बाँग के सहारे गाँव का कामकाज चलता था, और आज भी यह प्रथा एकदम से गई नहीं है। गाँव के राजगीर और बढ़ई बाँग के आधार पर काम शुरू करते, पूरा करते और विश्राम करते। हम समूह प्रार्थना में सर्वधर्म की प्रार्थना ही संगठित करते और कभी-कभी मुस्लिमभाई भी उसमें शामिल होते। शादी की बारात मस्जिद के पास से गुजरती तो बैंड बजाना बन्द हो जाता। नये साल के रोज मेरे पिताजी के मुस्लिम मित्र बिला नागा हमारे घर आते। पर जिना साहब का जादू तो देखे! स्वराज्य मिला तब गाँव के लीगी मुसलमान कहते थे—"हँस के लिया पाकिस्तान, अब लड़के लेंगे हिन्दुस्तान"। पाकिस्तान से उन दिनों आये लाखों हिन्दू परिवारों की करुण कथा कभी थोड़ी अतिशयोक्ति के साथ लोगों में चर्चित होती रहती थी। दिल्ली में षड्यंत्र रचे जाते और कभी-कभी इन षड्यंत्रों के तहत सच्ची-झूठी अफवाहें फैलतीं। सरदार गृहमन्त्री थे। वे गुण्डों के साथ सख्ती से पेश आने में विश्वास रखते थे। मस्जिदों में से शस्त्रों का विपुल भण्डार मिल जाता और इस बावत सख्ती से काम लेने की नौबत आती तो अपने बारे में गलत फहमी फैलेगी इसकी परवाह किये बिना वे जो उचित समझते करते थे। ऐसा करना उनके कर्तव्य का अंग था। उन्होंने हिन्दू गुण्डों को माफ किया हो ऐसा एक भी उदाहरण मिलना कठिन है। मुस्लिम आततायियों के साथ सख्ती बरती जाती तो वे फौरन नेहरू या गांधीजी के पास पहुँच जाते। यह बड़ी ही सहज और अनिवार्य बात थी। गाँधीजी के पास ऐसी शिकायत आती तो वे फौरन सरदार को पत्र लिखते या बात करते। सरदार तुरत ही सच्ची बात का खुलासा देते। बँटवारे के बाद के हिन्दुस्तान में मुसलमान अल्पमत में थे अतः उनके प्रति विशेष सौजन्य दिखाने की गाँधीजी की वृत्ति उचित थी परन्तु इसके साथ ही कानून और व्यवस्था बनाये रखने के लिये गुनाहगार को उचित सज़ा देना भी कम महत्त्व का काम नहीं था। आर. एस. एस. प्रेरित हिन्दू

कौमवाद भी उन्मादी बना था यह ध्यान में रखना होगा। इस उन्माद ने ही अंत में गांधीजी का बलिदान लिया और समग्र शांति की स्थापना हुई। उन दिनों सरदार ने गलतफ़हमी की परवाह किये बिना अपने कर्त्तव्य का निर्वाह न किया होता तो दोनों पक्ष की अपार जन-हानि हुई होती। जिन्ना पाकिस्तान मिलने के बाद भी शान्त नहीं बैठे थे। हैदराबाद, जूनागढ़ और भोपाल पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र रहने के लिए छटपटा रहे थे। ऐसे समय अपने बारे में गलतफहमी पैदा होने के भय से युक्ति, अभिकर्तत्व और पटुता न इस्तेमाल करें वे ऐसे निर्जीव नहीं थे। शायद ऐसी गलतफहमी की बाबत चिंता न करते हुए, कर्तव्यपरायण बने रहकर उन्होंने जो दक्षता प्रगट की उसमें उनकी धातु व्यक्त होती है। असली हकीकत को समझे बिना सरदार को सम्प्रदायवादी कहना धर्मनिरपेक्षता [सेक्युलरिज्म] की संकल्पना को रौंदने के बराबर है। गुण्डों का कोई धर्म हो सकता है क्या? गुण्डा तो बस गुण्डा होता है। ऐसे आततायियों के साथ सरदार कठोर हाथों से काम न लेकर क्या हाथ जोड़कर उनसे विनय करते? सरदार ऐसा करें ऐसी अपेक्षा ही अप्रासंगिक होगी।

सरदार का तथाकथित 'सम्प्रदायवाद' कैसा था इसका एक नमूना देख लें। ता० २६-७ ४७ के रोज गाँधी के पास दो खाकसार (मुसलमानी राजनीतिक संगठन के सदस्य) भाई पहुँचे और रोरोकर शिकायतें की : 'मस्जिद में गोली बारी हुई, उसमें बहुत से लोगों का खून हुआ। एक सत्तर वर्ष के बूढ़े को गोली लगी। कौन मरा, कौन बचा इसकी खबर नहीं है। घेरा डाल दिया। तीन दिन तक खाकसार भूखे प्यासे मरते रहे, पाखाने या पेशाब करने भी न जा सके।' ता०-६-८-४७ के रोज अर्थात स्वराज्य मिलने से आठ रोज पहले गाँधीजी ने लाहौर से सरदार को एक पत्र लिखा। यह एक मात्र ऐसा पत्र है जिसमें गाँधीकी ने सरदार को "सरदार साहब" कहकर संबोधित किया है। पत्र में गाँधीजी से मिलने गये एक खाकसार भाई की कठिनाइयों का उल्लेख है। यह सज्जन गाँधीजी से मिलने गये तब होटल से पुलिस इनका सामान उठा ले गयी।

अब इस बावत सरदार ने गाँधीजी को पत्र लिखकर जो खुलासा ता०-११-८-४७ को दिया उसका अवलोकन कर लें :

"खाकसार व्यर्थ ही आपके पीछे लगे हैं.....गोली चलाने की बात एकदम झूठ है और कोई भी खाकसार दिल्ली में नहीं मरा है। मस्जिद में घुसकर ये खाकसार १५-८-४७ का उत्सव ध्वंस करने का षड्यंत्र रच रहे थे। कांग्रेस का झंडा न फहराने देना, मारपीट करना, ऐसी साजिश कर रहे थे। इससे मुसलमान कमिश्नर ने मस्जिद में जाकर टियर गैस छोड़कर सबको पकड़ लिया था। इसके अलावा और कुछ भी नहीं हुआ था। लाहौर से आज आपका लिखा पत्र लेकर खाकसार आये। इनकी शिकायत भी एकदम झूठी है। इन्हें कमिश्नर के पास भेजा है। खाकसारों को पाकिस्तान में दिल्ली और आगरा चाहिये, अजमेर भी चाहिये। कमिश्नर इन्हें दिल्ली में नहीं रहने देना चाहता और ये लोग मस्जिद में घुस जाते हैं। यहाँ का कोई भी मुसलमान इनका साथ नहीं देता।"†

उन दिनों भावनाएँ कितनी उद्वेलित थी इसकी एक झलक उपरोक्त बयान में से मिलती हैं। स्वराज्य के दिन का उत्सव कड़ुवा बन जाय ऐसा षडयंत्र करनेवालों के प्रति सरदार नरमी से काम लें और मस्जिद की पवित्रता का लाभ उठानेवाले गुंडों के विरुद्ध मुसलमान कमिश्नर जो कदम उठाये उसमें 'सम्प्रदायिकता' कहाँ से आ गयी ? गांधीजी के पास कैसी झूठी शिकायतें पहुँचती थी इसका अहसास भी उपरोक्त घटना से हो जाता है। समाज में अराजकता फैलाने के इच्छुक गुंडा तत्वों के विरुद्ध यदि सरकार कानून और व्यवस्था की रक्षा न करे तो फिर उसकी जरूरत ही क्या है ?

'इट इज़ नो गुड टु कम्पेयर द इनकम्पेयरेबल्स' यह तो स्पष्ट है कि वल्लभ भाई 'सरदार' पटेल थे; 'महात्मा' पटेल नहीं थे। उन्होंने ऐसा दावा भी कभी

---

† मणीबहन पटेल, 'बापू ना पत्रो-२, सरदार वल्लभ भाई ने' नवजीवन, अहमदाबाद, १९५२, पृ० ३६०।

नहीं किया है। गांधी जी के मापदंडों से मूल्यांकन करने का काम कुछ क्षण छोड़ दें तो ज्ञात होगा कि सरदार अपने क्षेत्र में अत्यन्त उच्चकोटि के राजपुरुष (स्टेट्समैन) थे। स्टेट्समैन के लिए आनन्दशंकर ध्रुव और उनके बाद गोवर्धन राम ने 'देशहित चिंतक' शब्द प्रयोजित किया था ऐसा आदरणीय विष्णु भाई त्रिवेदी ने मुझे बताया। इस अर्थ में सरदार 'स्टेट्समैन' थे ऐसा अवश्य कहा जा सकता है। सरदार की सुजनता थोड़ी खुरदरी अवश्य थी पर राजनीति की उनकी सूझ अत्यन्त सूक्ष्म थी। वे महान थे पर अन्ततोगत्वा मनुष्य ही तो थे। कैसे भी महान व्यक्ति में पूर्णता की आशा नहीं जा सकती। गांधीजी के बिना सरदार पनपे न होते यह सत्य है पर इसके साथ ही प्रश्न उठता है कि सरदार के बिना गांधीजी जमते क्या? कालप्रवाह के एक महत्त्वपूर्ण मोड़ पर भारत को सरदार मिले और सरदार ने उस मोड़ को कुशलता से पार कर लिया। आनेवाली सदियों में भारत की प्रजा सरदार को अधिक याद करेगी; कारण यह कि मोड़ पार करने के बाद मोड़ का दर्शन अधिक स्पष्ट और विशद होता है।

गुणवंत शाह

११–मंगलमूर्ति
कदम्बपल्ली रोड,
सूरत–१

डा० गुणवन्त शाह

—वड़ोदरा म० स० युनिवर्सिटी में लेक्चरर और बाद में रीडर के पद पर अनेक वर्षों तक काम किया (१९६१–७२)

—१९६७-६८ में युनिवर्सिटी आफ मिशिगन (एन० आर्बर, यू० एस० ए०) में विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में काम किया।

—एक वर्ष मद्रास में टेकनिकल टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट में शिक्षा विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष के रूप में और उसके बाद बम्बई की एस० एन० डी० टी० वीमेन्स युनिवर्सिटी में प्रोफेसर के रूप में डेढ़ वर्ष कार्य किया (१९७२-७४)।

—सम्प्रति दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी में शिक्षण-भवन के प्रोफेसर और अध्यक्ष (सन् १९७४ से)।

—युनेस्को की परिषद में इकोनामिक्स आफ मीडिया टेक्नोलाजी स्टडी ग्रुप (पेरिस) के उपाध्यक्ष चुने गये (१९७५) यूनेस्को की पूर्व जर्मनी (लायप्जिग) में हुई सभा में भारत के एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया (१९७९)।

—युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन की अनेक कमेटियों में सदस्य और पूर्व जर्मनी के साथ उच्च शिक्षा में सहयोग स्थापनार्थ गये भारतीय डेलीगेशन के सदस्य।

—'नूतन-शिक्षण' के भूतपूर्व संपादक और अन्य कई अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डलों के सदस्य।

—इंटरनेशनल असोसियेशन आफ एजुकेटर्स फॉर वर्ल्ड पीस, गुजरात राज्य के चासंलर।

– अफ्रीका के देशों की भाषण-यात्रा (१९८०)

—वानकुवर (कैनेडा) में आयोजित डिस्टन्स लर्निंग पर हुए बारहवें विश्वसम्मेलन में रिसोर्स पर्सन के रूप में भाग लेकर पेपर प्रस्तुत किया। इस निमित्त अमेरिका, यूरोप, जापान, थाईलैंड, मलयेशिया, सिंगापुर की यात्रा की और विश्व-विद्यालयों में भाषण दिया।

—इंडियन असोसिएशन फॉर एजुकेशनल टेक्नोलाजी के मन्त्री (१९७० से), १९८१ में इसा संस्था के अध्यक्ष।

—मूल वतन रांदेर, सूरत, जन्म १२-३-१९३७।

—गुजराती भाषा में निबन्ध, काव्य और उपन्यास लिखते हैं। 'गुजरात मित्र' ओर 'सन्देश' में नियमित रूप से लिखते हैं।

—'कार्डियोग्राम,' 'रणतो लीलांछम', 'वगडा ने तरस टहूकानी', 'झाकलभीनां पारिजात' 'विचारोना वृन्दावन मां'—निबन्ध संग्रह, 'रजकण सूरज थवाने शमणे', तथा 'पवन नुं घर' उपन्यास, और 'विस्मयनुं परोढ' तथा 'फुट प्रिंट्स आन द होरायजन' काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

● ● ●

हम सब जानते हैं, तमाम मुल्क जानता है और इतिहास सफे रंग कर जिनकी बात कहेगा ऐसी यह शानदार कहानी है। सरदार को भारत नये भारत के घड़ने वाले और एक करने वाले की सूरत में याद करेगा और उनकी दूसरी कामयाबियों की तारीफ करेगा। पर यहाँ हम उन्हें आजादी की लड़ाई में हमारे दल के एक महान् 'सरदार' की सूरत में याद करेंगे। मुश्किल हालात में और जीत के पलों में सच्ची सलाह देने वाले की सूरत में याद करेगें। जिसके ऊपर हमेशा भरोसा रख सकें ऐसे दोस्त और साथी की सूरत में हम उन्हें याद करेगें। मुश्किल हालात में डगमगा जाते दिलों को जोशो खरोश देकर ताकत देने वाले नेता की सूरत में हम उन्हें याद करेगें। और सबसे ज्यादा तो दोस्त, साथी और बिरादर की सूरत में हम सब याद करेगें। उनसे सट कर मैं यहाँ बैठता था, उनकी खाली कुर्सी देखकर मुझे एक प्रकार का अकेलापन और खालीपन महसूस होगा।

—जवाहरलाल नेहरू

बापू का सन्देश टूटा-फूटा भी लोगों तक पहुंचाने वाले कितने कम हैं? बाकी हमने किया ही क्या? बापू ने नाहक ही बढ़ा चढ़ा डाला। (बारडोली की विजय के बाद कहे गये शब्द)।

— बल्लभभाई पटेल

वल्लभभाई मुझे न मिले होते तो जो काम हुआ वह नहीं ही होता, इतना सारा शुभ अनुभव मुझे उनसे मिला है।

—गांधीजी

सरदार पटेल : इतिहास के निर्माता

भूमिका

इस सभा में ऐसे कितने ही महानुभाव होंगे जिन्होंने सरदार को देखा होगा, सुना होगा और कभी उनके साथ काम भी किया होगा। ऐसे लोगों के समक्ष मैं किस हैसियत से बोलूँ इस बाबत अपने मन में चलती ऊहापोह की उपेक्षा करके मैंने माननीय मेयर श्री का आमन्त्रण स्वीकार किया इसके पीछे एक कारण निहित है। भारत के इतिहास में सरदार के अवदान की महत्ता पर हमारी जनता और खास करके स्वराज्य मिलने के बाद पैदा हुई पीढ़ी ने यथावश्यक ध्यान नहीं दिया है, इस शिकायत में मुझे पर्याप्त तथ्य प्रतीत हुआ। भविष्य का इतिहासकार हमारी इस त्रुटि की उपेक्षा कर सके इतना बड़ा अवदान सरदार ने दिया है, यह समझने के लिए आवश्यक स्वाध्याय करने का मौका मिलेगा, इस लोभ से ही मैंने इस व्याख्यान के लिये हामी भर ली थी। ऐसा सुन्दर मौका प्रदान करने के लिए मैं वडोदरा म्युनिसिपल कारपोरेशन के सदस्यों तथा श्रीमान् मेयर का आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं मुश्किल से दस बारह वर्ष का था तब एक बार बारडोली में सरदार श्री को देखने, सुनने और पाँच-सात वाक्यों का आदान-प्रदान करने का लाभ मुझे मिला था। अब आज भी मेरे मन में आत्मश्रद्धा की अविचल चट्टान में से काट कर बनी उस शौर्यवान व्यक्तित्व की मुद्रा स्पष्ट रूप से अंकित है। लक्ष्मण, भरत, हनुमान या विभीषण विहीन रामावतार की कल्पना करके देखें। बलराम, युधिष्ठिर, अर्जुन या भीम के बिना कृष्ण की कल्पना करके देखें। कभी-कभी लगता है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, राजाजी, आचार्य कृपलानी या महादेव

देसाई जैसे अनेक साथियों के बिना महात्मा गांधी भला जमते ? आने वाले युगों में जब कभी भी गांधी-युग की कथा लिखी जायगी, पढ़ी या गायी जायेगी या फिल्मायी जायगी तब उसमें सरदार का स्थान सर्वोपरि रहेगा। डी० वी० तह्माणकर के शब्दों में कहूँ तो ईसा मसीह के जीवन में जो स्थान ज्हान द बैपटिस्ट का था वही स्थान महात्मा गांधी के जीवन में सरदार पटेल का था। ज्हान की भाँति सरदार ने भी मुक्तिदाता के स्वागत के लिए लोगों को तैयार किया था।

इतिहास की एक अनोखी व्याख्या करते हुए मैक्समूलर ने कहा था—'इतिहास माने मानवीय मन की आत्मकथा।' तौल्सतोय ने सन् १८६९ (महात्मा गांधी का जन्म वर्ष) में 'दी आइडिया आफ काज़' नामक अपने निबन्ध में, इतिहास को 'मानवजाति का अचेतन जीवन' (द अनकांशसस लाइफ आफ ह्यु मैनिटी) कह कर वर्णित किया था। इतिहास की इन दोनों संकल्पनाओं को ध्यान में रखकर मैं इतना कहना चाहता हूँ कि इस देश में व्यापक लोकचेतना को मथकर सरदार ने भारत के इतिहास को रूपायित करने का भव्य पुरुषार्थ किया। इतिहास की व्यक्त-अव्यक्त शक्तियाँ जन-सामान्य के जीवन को निर्मित करती हैं, यह सही है, परन्तु अनेक विरल व्यक्ति ऐसे होते हैं जो काल देवता के रचनाकार्य में अपने योगदान द्वारा इतिहास की करवट बदलने के निमित्त बन जाते हैं। सरदार को मैं इतिहास का निर्माता कहता हूँ, वह इसी अर्थ में। कालदेवता के समक्ष मनुष्य की क्या बिसात है ! लेकिन तो भी कितने ही महामानव अपनी सूझबूझ से "दादाजी की लाठी का घोड़ा" बनकर कालदेवता को कभी-कभी रिझा लेते हैं। इमर्सन ने कहा है "डिफिकल्टीज़ एक्जिस्ट टु बी सरमाउंटेड। ए स्ट्रेनुअस सोल हेट्स चीप सेक्सस।" मुश्किलों ने सरदार को कसौटी पर कसा अवश्य, पर सस्ती सफलताओं को त्यागकर उन्होंने अपना इतिहास कृत्य पूरा किया। सरदार के जीवन पर दृष्टि डालें तो दो उत्तुंग शिखर ध्यान आकर्षित

करते हैं—१. बारडोली का संघर्ष और २. देशी राज्यों का विलीनीकरण। अपने व्याख्यान में इन दोनों मुद्दों को समेट कर अन्त में मैं सरदार के व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी करना चाहता हूँ। सरदारश्री ने इतिहास को आकार प्रदान किया, इस बात का प्रतिपादन करने के लिए मैं अपने वक्तव्य को तीन विभागों में बाँटना चाहता हूँ :

१. बारडोली ने इतिहास का सृजन किया।

२. भारत के नक्शे को आकार मिला।

३. वज्रादपि कठोराणि मृदुनिकुसुमादपि।

१. बारडोली ने इतिहास का सृजन किया

बारडोली की लड़ाई को हम स्वराज्य गाथा का किष्किंधा कांड कह सकते हैं। इस लड़ाई के अन्त में भारत को एक कुशल व्यूह रचना विशारद, अडिग निश्चय के दम पर लोगों में श्रद्धा का सिंचन करनेवाले और लड़ाई का कुशल संचालन करने वाले सरदार प्राप्त हुए। अपने जीवन को सत्य की प्रयोगशाला मानने वाले महात्मा गांधी को अहिंसक प्रतिकार का एक बहुमूल्य शस्त्र मिला जिसे 'सत्याग्रह' के नाम से जाना गया। अपने जीवन में छोटे-मोटे अनेक अवसरों पर, यहाँ तक कि दक्षिण अफ्रीका के दिनों में भी गांधी जी ने सत्याग्रह का विनियोग करना शुरू कर दिया था। ऐसा करने में अनेक बार गांधी जी कठिन कसौटी पर कसे भी गये थे, पर सत्याग्रह शस्त्र की असरदारी की प्रतीति भी होने लगी थी। सन् १९२८ में अंग्रेज सरकार की अन्यायपूर्ण लगान वृद्धि के विरुद्ध बारडोली तालुका के 'शूर ८८ हजार'[1] भोले-भाले प्रजाजनों ने अंग्रेज सल्तनत से जो अहिंसात्मक लड़ाई लड़ी, उसने सारी दुनिया का ध्यान आकर्षित किया। इस लड़ाई ने सिद्ध कर दिया कि—

—कुशल संचालन हो तो सत्याग्रह का शस्त्र पानीदार है,

—अहिंसा मात्र व्यक्तिगत सद्गुण या भावना नहीं है, सामुदायिक

---

१. कवि श्री खबरदार ने—"शुराबावीस हजार" लिखा है उस संदर्भ में।

स्तर पर भी उसका विनियोग हो सकता है।

—मात्र युद्ध में ही नहीं, अहिंसक सत्याग्रह में भी व्यूह रचना का, प्रचार का, कुर्बानी का और सुयोग्य नेतृत्व का स्थान महत्वपूर्ण है, और सत्याग्रह के लिए यदि प्रजा को ठीक ढंग से तैयार किया जाय तो गांधी जी के मार्ग से स्वराज्य मिलना अशक्य नहीं है।

विशाल सामाजिक फलक पर गांधी जी के सत्याग्रह को सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है, इस बात की प्रतीति बारडोली की लड़ाई ने करायी और देश तथा दुनिया में बारडोली का नाम गूँजने लगा। इस लड़ाई में वल्लभ भाई का सरदारपन ही नहीं, उनका 'सैनिकपन' भी प्रकट हुआ। सफल सरदार होने के लिए सैनिक बनना जरूरी है, यह उन्होंने अपने आचरण द्वारा बता दिया। बड़ी सल्तनत के विरुद्ध चल रहे संग्राम के सेनापति की हैसियत से उनकी आज्ञा बिना, बारडोली न जाने को, वे गांधी जी से कह सके और इसी के साथ गांधीजी के आदेशों का पालन हो इसकी सावधानी वे एक सैनिक के रूप में बरत सके। बहुत बार मुझे लगता है कि भविष्य के इतिहासकार को सरदार के अन्दर पलथी मार कर बैठे सैनिक की ओर भी दृष्टि डालनी होगी। अहिंसक लड़ाई में भी अनुशासन, खुमारी और जोश तो जितना युद्ध में आवश्यक होता है उतना ही चाहिये—और अहिंसा कायर का शस्त्र नहीं है, यह बारडोली की लड़ाई ने सिद्ध कर दिया। गांधी के सुदर्शन चक्र जैसा यरवडा चक्र घर-घर में घूमने लगा। कितनी ही बार तो ढीले पड़ रहे पति को रण के मोरचे पर टिके रहने की प्रेरणा बारडोली की वीरांगनाओं ने दी और कुड़की, तलाशी और जुलूस के सामने वे झुकी नहीं। उन दिनों बारडोली तालुका में ब्रिटिश सल्तनत तो मात्र जुल्म तक ही सीमित रह गयी थी, बाकी तो सरदार की बात ही कानून थी। लड़ाई के विवरणों में न जाकर उस निमित्त देश को सरदार की जान-

कारी मिली। इस बात को ही आगे बढ़ायें। कुछेक प्रसंगों द्वारा सरदार द्वारा किये गये वशीकरण पर विचार करें—

प्रसंग–१†

डिप्टी कलेक्टर ने किसान से पूछा : "तुम लगान क्यों अदा नहीं करते ?"

"वृद्धि रद्द करें, तो अदा कर देंगे" किसान ने कहा।

"पर आपके गाँव पर तो नाम मात्र की वृद्धि की गयी है।"

"लेकिन साहब, पौन मन पानी में तीन सेर आटा घोल कर सत्तु बनाते हैं उसमें से भी सरकार आधा सेर आटा ले लेना चाहती है, ऐसा कैसे हो सकता है ?"

"लगान की वृद्धि तो हकीकत है, इसलिए यदि नहीं भरोगे तो तुम्हारी ज़मीन बेदखल करेंगे।"

"अरे, साहब। आपकी बात हमें अच्छी नहीं लगती।

फूल में फल कपास का, और फल किसका।
राजा में राजा मेघराजा, और राज किसका।"

"इसका मतलब ?"

"बेदखल तो मेघराजा करना चाहें तो कर सकते हैं, दूसरा कोई राजा ऐसा कर ही नहीं सकता।"

प्रसंग–२

कलेक्टर साहब ने सरभोण के पटेल से पूछा : "तुमने लगान अदा किया है ?"

---

† जेठालाल गांधी, 'बारडोली सत्याग्रह', माहिती खातुं (सूचना विभाग) गुजरात सरकार, सचिवालय, गांधी नगर, मार्च १९७४, पृ० १०।

"बख्शोश में मिली जमीन का लगान भरा है क्योंकि बारडोली से सरदार का हुकुम निकला है कि यह लगान चुका देना है", पटेल ने कहा।

"दूसरी ज़मीन का भी भर दो और दूसरे लोगों से भी भर देने को कहो।" कलेक्टर ने कहा।

"यह बेकार की बात है। यह मेरे लिये या अन्य किसी के लिए करना सम्भव नहीं है। लोग मेरी सुनेंगे ही नहीं। लोगों को बेदखली की या और किसी बात की परवाह नहीं है।" पटेल ने नकद उत्तर दिया।

कलेक्टर उसे और न सता कर आगे बढ़ गये।

पूज्य रविशंकर महाराज की भूदान पदयात्रा सन् १९५७-५८ में बारडोली तालुका में चल रही थी। महाराज ने तो बारडोली की लड़ाई में 'सरदार साहब' के सैनिक के रूप में सेवा की थी अतः एक-एक गाँव में वे उन्हें लड़ाई के संस्मरण रसपूर्वक सुनाते थे। एक बार हम मिढोला नदी के सामने से गुजर रहे थे, तब महाराज ने एक बात कही थी जिसे मैं आज भी भूला नहीं हूँ। बारडोली की लड़ाई के अनेक वर्षों बाद किसी ने महाराज से कहा, "महाराज, आज इस क्षेत्र में विचरण करते हैं तो विश्वास नहीं होता कि यहाँ के लोगों ने इतना बड़ा पराक्रम कैसे किया था ?" महाराज ने उसे इसी मिढोला नदी की ओर इंगित करके कहा था—"यह मिढोला इस समय कैसी शान्त, सीधी-सयानी दिखायी पड़ती है ? इसमें बाढ़ आती है तब इसका रोष देखने लायक होता है। तो उन दिनों प्रजा में उत्साह, त्याग और बलिदान की बाढ़ आयी थी। अब उसकी कल्पना आज किस तरह की जा सकती है ?"

ऐसे तो अनेक प्रसंग प्रस्तुत करने का लोभ मैं त्याग देता हूँ और एक

खास फरमाइश करना चाहता हूँ : सरदार के चुनिंदा सैनिकों में से एक स्व० कुँवर जी मेहता के संस्मरणों का संकलन स्व० बाबू भाई प्र० वैद्य की पुस्तक 'रेती मां वहाण' सभी के खासकरके जवानों के पढ़ने लायक है। सरदार और गांधी जी ने किस प्रकार मिट्टी में से मर्द बनाये, इसका इसमें सजीव वर्णन किया गया है। गांधीजी द्वारा स्वराज्य हेतु संचालित-लड़ाइयों की खूबी यह थी कि लड़ाई के साथ-साथ व्यापक लोक शिक्षण का बुनियादी काम भी चलता रहता था। सरदार की वाणी ने लोगों पर जादू किया और मानो मुर्दे उठ बैठे, गाँव-गाँव में नवचेतना के झरने फूट निकले।

सरदार की खाँटी देसी भाषा की कुछ बानगी देख लें†—

सरदार की वाग्मिता

—हमें बिना सोचे समझे पागलों की तरह कुछ करना है, ऐसा नहीं है। मुफ्त की झखमारी में मुझे कोई रस नहीं है। मैं तो आपके अन्दर कुछ देखूँगा तो आपके बाजू में रहूँगा। आपको कोई खेल करना हो तो किसी और को सौंपना। लड़ना ही हो, यदि सच्चा त्याग करना हो तो हो यह लड़ाई छेड़ियेगा। (बारडोली, ता० ४-२-१९२८)।

इसमें तो पाँच प्राण न्यौछावर करने वाले साथ हों तो अच्छा, पर पाँच हजार भेड़ें बेकार होंगी। आप क्यों डरें ? आपको डर किस लिये लगे ? कुड़की से किस लिए डरते हैं ? विवाह में कर्ज करके भी हजारों फूंक डालते हैं तो कुड़की वाला दो सौ के बदले पाँच सौ का माल ले जायगा, इसमें कायर क्यों बनते हैं ? (वराड, ता० १३-२-१९२८)

—जो किसान मूसलाधार बरसात में काम करता है, कीचड़-गारे में

---

† ईश्वरलाल ई० देसाई, 'बारडोलीसत्याग्रह', स्वातन्त्र्य इतिहास समिति, जिला पंचायत, सूरत, १९७०।

खेती करता है, मरकहे बैल से काम लेता है, जाड़ा घाम बरदाश्त करता है उसे डर किसका है ? किसे डोर टूट जाने के बाद एक मिनिट भी अधिक मिलता है ? जिसने किसान को बनाया है उसी ने बादशाह को भी बनाया है, तब किसान को डरना किसलिये चाहिये ? (अँमेटी, ता० २३-२-१९२८)

—इस राज्य रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं, एक पटेल (मुखिया) और दूसरा महसिल (लगान वसूल करने वाला), अथवा सरकारी गाड़ी के ये दो बैल हैं। ये बैल रात दिन खूब चाबुक खाते हैं, गालियाँ खाते हैं। कभी तनिक सा गुड़ चटाया जाता है तो वह मीठा लगता है और मार तथा गाली सब भूल कर वे गाड़ी खींचते है।

(सिसोदरा, ता० १०-४-१९२८)

—आज किसानों की स्थिति सड़क पर बिछाये जाने वाले कंकड़ों [गिट्टी] जैसी है। सड़क पर जिन कंकड़ों के सिर उठे होते हैं, उन्हें रोलर से रौंद कर दबा दिया जाता है, इसी प्रकार किसानों को रौंदने के लिए सरकार ने एण्डर्सन पेटेंट का स्टीम रोलर रखा है।

(अकोटी, ता० ११-४-१९२८)

—इस गाँव में २२०० लोगों की बस्ती है। इतनी भेड़ें पालनी हो तो एक चरवाहे से काम न चले। वह बेचारा उन पर अपने परिवार के सभी लोगों को लंबी लाठियाँ देकर लगा दे तभी उनकी देख-रेख कर सकता है। जब कि यह सरकार तो अपने आदमी रखने के अलावा भेड़ों की टोली में से ही दो मोटी भेड़े इस काम पर नियुक्त करके राज्य चलाती हैं। इसी को कहते हैं व्यापारी बुद्धि। इस प्रकार हमीं में से दो भेड़ों को चुन कर देख-रेख करायी जाय इसकी हमें शरम आनी चाहिए ···मैं गुजरातियों से कहता हूँ कि तन से भले आप दुबले हों पर कलेजा शेर का रखिये। स्वाभिमान के लिए मरने की ताकत हृदय में रखिये।

[सरभण, ता० १५-४-१९२८]

—एक चपरासी कुड़की का माल उठाये, तो महाजन एक जुट हो उसका नमक, मिरिच बन्द कर दें इसमें बहादुरी नहीं है। इसमें सभ्यता नहीं है। यह तो चिऊँटी को कचरने जैसी बात हुई। ऐसे निर्बल पर जुलुम करना उचित न होगा, इस पर तो दया आनी चाहिए। पुलिस को भी किसी को कोंचना नहीं चाहिये, उन्हें बाजार में पैसा खर्च करके भी चीज़ न मिले यह ठीक नहीं है। मैं किसी भी अमले को अंडस में नहीं डालना चाहता, मैं तो सरकार को अदंब में लाना चाहता हूँ, जिससे दुनिया के सामने वह लज्जित हो और भविष्य में अपने अमलदारों को ऐसे काम करने के लिए न भेजे। बारडोली तालुका में आज एक प्रचण्ड भट्टी सुलगाई गयी है, इसमें शुद्धातिशुद्ध बलिदान देना है।

(बारडोली, ता० २६-४-१९२८)

—सरकारी पक्ष का एक अखबार कहता है, गुजरात को गांधी-रोग लगा है। यह रोग सभी को हो। गांधीजी क्या कहते हैं ? अपने पैरों पर चलो···दुनिया में यह नया प्रयोग है। गांधी जी ने इसे प्रस्तुत किया है। दुनिया ने आज तक एक ही प्रकार की लड़ाई देखी है। पशुबल के विरुद्ध पशुबल की—यह लड़ाई अपार पशुबल के सामने हाथ जोड़ कर बैठ रहने की है। हाथी के कान में भुनगा पैठ गया है।

(भामैया, ता० १४-५-१९२८)

विस्तारभय से इतने अवतरणों से ही सन्तोष करता हूँ। गुजराती गद्य के एक अदना उपासक के नाते मुझे लगता है कि सरदार की वाणी में अखा की बेधकता, नर्मद का 'जोश' और स्वामी आनन्द की देसी शैली में प्रसरती माटी की महक—ये तीनों लक्षण एक साथ प्रकट होते दिखायी देते हैं। उनकी वाणी में धारदार व्यंग्य, हृदय चोर कर पैठ जाय ऐसी दलीलें, घरेलू उपमाएँ, हल्का विनोद, तर्क का तीखापन, वेधक कटाक्ष, सनसनाती सोटियाँ और संयम से शोभित अनुशासनता

के दर्शन होते हैं। लोगों को चंग पर चढ़ाने के साथ ही सरदार अनुशासन के पाठ भी पढ़ाते हैं और लोकशक्ति का आवाहन करके जागृत भी करते हैं। इस लड़ाई में भावुकता की बाढ़ के साथ, कम करके गिनने की आदत से अछूती व्यूह रचना भी देखने को मिलती है। सत्याग्रह का शस्त्र लोक पक्ष में उमंग और बलिदान की गहमा-गहमी के उपरान्त आत्म संयम से शोभायमान अनुशासन भी माँग लेता है, इस बात का ख्याल सरदार ने कितना रखा है यह ध्यान देने योग्य है। विजय तो प्राप्त करनी है पर सत्याग्रह की लक्ष्मण रेखा को डाके बिना प्राप्त करनी है। इस हेतु सरदार की सचेतनता उनके भाषणों में देखने को मिलती है। सच्चा सत्याग्रही सर्वप्रथम अपना चौकीदार है और उसे सत्य-अहिंसा की कठोर मर्यादा पालनी होती है। सत्याग्रह का आदर्श केवल थाली का बैंगन नहीं है बल्कि योग्य व्यक्ति के लिए तो वह एक अमोघ शस्त्र है, इस बात की सच्ची प्रतीति देश तथा दुनिया को बारडोली के बाद ही हुई। इस प्रकार बारडोली स्वराज्य की लड़ाई का प्रयोगक्षेत्र बन गया। अन्त में सरकार झुकी और 'बारडोली' किसी गाँव का नाम न रहकर एक घटना बन गया।

सरदार का सैनिकपन

यह एक ऐसी विजय थी जिसका बहुत कुछ यश सरदार के नेतृत्व के हिस्से में आता है। ऐसी विजय किसी भी आदमी को मदमत्त कर सकती है। पर सरदार तो किसी और ही धातु के बने थे। सरदार की सफलता का सच्चा रहस्य मुझे उनमें विद्यमान सैनिकपन में दिखता है। बारडोली की विजय ने सरदार को राष्ट्र का जनगन मन अधिनायक तो बनाया पर सरदार ने विजय का यश अपने पास रख लेना उचित नहीं माना और गांधीजी की महानता को अर्पित कर दिया। बारडोली में हुई एक सभा में उन्होंने कहा :—

"अहिंसा के सिद्धान्त के पालन करने वाले तो हिन्दुस्तान में इधर-उधर अज्ञात बहुत से लोग पड़े हैं। उनके भाग्य में प्रसिद्धि नहीं है। जो पूरा पालन नहीं करते उनके भाग्य में प्रसिद्धि आ टपकती है। अहिंसा का पालन करने की बात करना ही मेरे लिये तो छोटे मुँह बड़ी बात करने जैसा है--कोई आदमी हिमालय की तलहटी में बैठ कर उसके शिखर पर पहुँचने की बात करे उसके जैसा है। पर कोई कन्याकुमारी के पास बैठकर उस शिखर पर पहुँचने की बात करे उससे तो तलहटी में बैठकर बात करे वह कुछ ज्यादा सयाना कहलायेगा, इतना ही। बाकी मैं तो गांधीजी के पास से प्राप्त किया टूटा फूटा सन्देश आपके सामने रखता हूँ। इतने ही से यदि आप में प्राण आये तो यदि मैं पूरा पालन करने वाला होता तो १९२२ की प्रतिज्ञा पालन करके हम बैठ गये होते।"[1]

इन शब्दों में भरपूर नम्रता तो है ही पर इसके साथ अपनी मर्यादाओं की स्पष्ट स्वीकृति करने की तजवीज भी देखने को मिलती है। नवसारी के लोगों ने मानपत्र दिया, उसके जबाब में सरदार ने कहा--

"बहुत से लोग मानते हैं कि मैंने जो किया वह महात्मा जी से न हो पाता। पर मेरे अन्दर तो महात्मा जी का एक हजारवाँ अंश भी होता तो मैंने जो कुछ किया है, इसका दस गुना करके दिखाता। बहुत से लोग मानते हैं कि मेरे अन्दर जो कुछ थोड़ी दुष्टता बची है, उसे इस्तेमाल करके उसके दम पर यह हुआ। पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि बारडोली में जो कुछ किया वह महात्मा जी के आशीर्वाद से ही कर सका हूँ। जिन्हें स्वतन्त्रता चाहती हो वह उनकी बात माने।"[2]

---

१. नरहरि द्वा० पारीख, 'सरदार वल्लभ भाई', नवजीवन, अहमदाबाद, १९५० पृष्ठ ४५०।

२. ईश्वरलाल ई० देसाई, 'बारडोली सत्याग्रह', स्वातन्त्र्य इतिहास समिति, जिला पंचायत, सूरत, १९७०, पृ० ३८४।

बारडोली की लड़ाई के बाद १९२९ के दिसम्बर में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। यह सर्वविदित है कि पंडित मोतीलाल नेहरू अपने सुपुत्र जवाहरलाल नेहरू जी को कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में देखना चाहते थे। इस हेतु हरेक प्रान्त से सुझाव आये थे इनमें से दस प्रान्तों ने गांधीजी को, पाँच प्रान्तों ने सरदार को और तीन प्रान्तों ने जवाहरलालजी को अध्यक्ष पद पर बैठाने की इच्छा व्यक्त की थी। गांधी जी ने अध्यक्ष पद स्वीकार करने की स्पष्ट ना कर दी। फिर सरदार का नाम सूचित किया गया। इस समय सरदार ने एक ही वाक्य में जवाब दिया : "जहाँ सेनापति जाने की ना करता है, वहाँ मैं एक सिपाही कैसे जाने की हिम्मत कर सकता हूँ?" अन्त में जवाहरलाल सर्व-सम्मति से चुने गये। याद रहे कि उस जमाने में कांग्रेस अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहने का रिवाज था। बारडोली की विजय के बाद पूरे अधिकार से प्राप्त होता इतना बड़ा सम्मान छोड़ देने में सरदार में निहित सैनिकपन फिर सुशोभित हो उठा।

आजादी का आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में स्वदेशी, स्वाश्रय, अनुशासन, अस्पृश्यता निवारण और एकता हेतु लोकशाला बन गया। वह मात्र अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बगावत न रहकर लोक-संस्कृति शिक्षण (केलवणी) का माध्यम बन गया। सत्य और अहिंसा के आदर्शों के प्रति गांधीजी के सूक्ष्म विचार यदि सामान्य प्रजा के पल्ले न पड़ें तब छोटी-मोटी बिछलनों के बीच भी प्रजा उस परहेज का पालन करे इस हेतु गांधीजी के निर्देश में रहते हुए प्रजा को जागृत रखने वाले एक सरदार की देश को जरूरत थी। प्रश्न केवल स्वराज्य प्राप्त करने का नहीं था, बल्कि स्वराज्य मिले इस हेतु अज्ञान, अन्धविश्वास, आलस्य और अनास्था में डूबी प्रजा को तैयार करने का था। बारडोली के सरदार का विरुद कविवर हरिवंशराय 'बच्चन' ने इस प्रकार गाया था :

पटेल के प्रति

१

यही प्रसिद्ध लौह का पुरुष प्रबल
यही प्रसिद्ध शक्ति की शिला अटल
हिला इसे सका न शत्रु दल
पटेल पर स्वदेश को गुमान है।

२

सुबुद्धि उच्च श्रृंग पर किये जगह
हृदय गम्भीर है समुद्र की तरह,
कदम छुए हुए जमीन की सतह
पटेल देश का निगह बान है।

३

हर पक्ष को पटेल तोलता
हरेक भेद को पटेल खोलता
दुराव या छिपाव से उसे गरज ?
कठोर नग्न सत्य बोलता।
पटेल हिन्द की निडर जबान है।

बारडोली की तुलना में स्थानीय कही जा सके ऐसे लोक युद्धों के लिए सरदार ने देश व्यापी लोक-जागरण का काम पूरी दक्षता से और कर्तव्य परायणता से किया और इतिहास का एक अध्याय स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। पर अभी तो दूसरा महान् इतिहास-कृत्य सरदार की सूझबूझ को कसौटी पर कसने की राह देखता खड़ा था। यह था अनेक देशी राज्यों का विलीनीकरण।

२. भारत के नक्शे को आकार मिला

सन् १९५३ में यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो भारत की यात्रा पर आये थे। वे अवाडी में हो रहे कांग्रेस अधिवेशन में भी उपस्थित हुए थे। वे जब इस देश से विदा हो रहे थे तब किसी पत्रकार ने उनसे पूछा कि भारत यात्रा के दौरान कौन-सी बात उन्हें सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक लगी। मार्शल टीटो के उत्तर में सरदार द्वारा संपादित कार्य की दुष्करता की बात प्रतिध्वनित होती है। मार्शल टीटो ने पत्रकार से कहा--"मैं नहीं समझ पाता कि देशी राज्यों का विलीनीकरण खून की एक बूँद बहाये बिना किस तरह हो सका।" यह ऐसा काम था जो सरदार की हिम्मत और दृढ़ता बिना पूरा हो ही नहीं सकता था। संयोग अत्यन्त विपरीत थे। देश को भारी मेहनत से मिला स्वराज्य झूठा हो जाय, ऐसी परिस्थिति थी। बटवारे के बाद मिला हिन्दुस्तान अनेक टुकड़ों में बँट जायगा, ऐसी स्थिति थी। इन टुकड़ों को एकत्र करके सरदार ने बहुत ही कम समय में भारत के नक्शे को आज जैसा है वैसा आकार दिया। ऐसा महान् ऐतिहासिक काम बड़ी दक्षता से पूरा करके सरदार ने इतिहास के एक अध्याय की रचना की। जिनके साथ सरदार के इस काम की तुलना की जाती है उस बिस्मार्क का जर्मन राज्यों के एकीकरण का काम तो अपेक्षाकृत बहुत ही छोटा और सरल था।

स्वराज्य प्राप्त हुआ उससे पहले के और उसके बाद के कुछेक महीनों के बीच ढीले-ढाले आदमी की हुलिया बैरंग हो जाय ऐसी विकट समस्याएँ देश के समक्ष मुँह बाये खड़ी थीं। सबसे कठिन समस्या ५६५ के करीब देशी राज्यों की थी। केवल काठियावाड़ में ही २१० के करीब देशी रजवाड़े थे। अविभाजित भारत के नक्शे पर लाल और पीले रंग के साथ ये अंकित हुए थे। भारत और पाकिस्तान इन दोनों में से

किसके साथ जुड़ना या फिर स्वतन्त्र रहना इस बात का निर्णय ब्रिटिश राज्य ने इन राजाओं पर छोड़ा था।

लार्ड माउँटबेटन १९४७ के मार्च में भारत आये। जून १९४८ तक सत्ता सौंप देने की सूचना उन्हें इंग्लैंड की ओर से मिली थी। १९४७ की चौथो जून को एक प्रेस कान्फरेंस में माउंटबेटन घोषणा करते हैं कि सत्ता का हस्तांतरण १५ वीं अगस्त १९४७ तक हो सकेगा। इस प्रकार स्वराज्य का दिन करीब दस महीने जल्दी आया। नतीजा यह हुआ कि विशाल भारतीय उपखंड के दो हिस्से करने का कठिन कार्य पूरा करने के लिये केवल दस सप्ताह का ही समय बच रहा। फिर देशी राज्यों की समस्याएँ तो खड़ी ही थीं।

मुस्लिम लीग के नेता जनाब मोहम्मद अली जिना को सैंकड़ों मील के अन्तर पर स्थित दो हिस्सों वाला पाकिस्तान मिला था पर उन्हें सन्तोष नहीं था। बटवारे के बाद जो हिन्दुस्तान बचा है वह भी विभाजित रहे इसी में उन्हें रुचि थी। इसमें पुनः उन्हें हैदराबाद के निजाम का सहयोग था। हैदराबाद सबसे बड़ा देशी राज्य था और तिस पर से देश के बीच में स्थित था। भोपाल के नवाब भी जनाब जिना के साथ थे और चेम्बर आफ प्रिंसेस[1] के चासंलर थे। मानों यह भी कम

१. इस चेम्बर ऑफ प्रिंसेज की एक कथा जानने योग्य है। सन् १९१९ में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट इंग्लैंड की पार्लमेंट में पास हुआ और मांग्टेयु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर चेम्ब्रर आफ प्रिंसेज की स्थापना हुई। इसका उद्घाटन हिज़ हाइनेस ड्यूक आफ कानोट के हाथों हुआ। ड्यूक के भाषण में पहली बार 'स्वराज्य' शब्द अँगेजों के वक्तव्य में सत्ता की ओर से प्रयुक्त हुआ, ऐसा वी० शंकर ने अपनी पुस्तक 'माई रेमिनिसेसेज़ आफ सरदार पटेल' में लिखा है।

हो इस प्रकार वाइसराय के सलाहकार तथा राजकीय विभाग के प्रधान सर कोनेड कोरफिल्ड भी पाकिस्तान के प्रति विशेष मोहब्बत रखते थे। ऐसे कठिन संयोगों के कारण भारत की गोटी वास्तव में अर्दब में आ गयी थी और देश के नेताओं की बेचैनी बढ़ गयी थी।

हैदराबाद के निज़ाम ने १९४७ की तीसरी जून को घोषणा की कि पन्द्रह अगस्त को ब्रिटिश हुकूमत के कूच करने के फौरन बाद वे अपने को खुद मुख्तार राज्य मानेंगे। निजाम ने जनाब जिना से पत्रव्यवहार शुरू कर दिया और जिना ने सूचित किया कि उन्हें हैदराबाद की एक सक्रिय मित्र राज्य रूप में जरूरत थी। निजाम ने जिना साहब की सलाह के बिना कुछ भी न करने का वादा किया। भोपाल के नवाब ने तो और भी नयो बात की। भोपाल भी भारत के बीच में स्थित राज्य था और मुस्लिम लीग के साथ नवाब की दोस्ती थी। निजाम ने तो जिना को सहयोग का आश्वासन दिया पर भोपाल के नवाब ने तो एक कदम आगे बढ़कर कितने ही हिन्दू राज्यों को भी पाकिस्तान में शामिल करने का प्रयास आरम्भ किया। जोधपुर और जैसलमेर के राज्य नवाब के जाल में फँसे भी, पर ये प्रयत्न अधिक समय तक नहीं चल सके। भोपाल के नवाब ने चेम्बर आफ प्रिंसेज के चासंलर पद से इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर पटियाला के महाराज आये। महाराजा पटियाला ने बन्धु राज्यों के भारत में शामिल होने के प्रयत्नों में खूब अच्छा सहयोग दिया। अपनी प्रजा का रोष बढ़ न जाय इस डर से भोपाल के नवाब ने भी सरदार की शरण ली। सरदार ने नवाब की भूलें माफ करके, उनके साथ खूब अच्छा बर्ताव किया।

५६५ सेवों की टोकरी

यहाँ एक बात नोट करने लायक है। राज्यों के विलीनीकरण के प्रयत्नों में सरदार को माउंटबेटन का बहुत सहयोग मिला। माउंटबेटन ने तोन बातें लक्ष्य में रखकर राज्यों का विलीनीकरण करने की सलाह दी।

ये मुद्दे थे—१. संरक्षण, २. विदेशी विभाग, और ३. संचार सम्पर्क। ऐसा सीमित एकीकरण सरदार के मन को स्वीकार्य नहीं था। पर उस समय दूसरा उपाय नहीं था। अतः इसे सरदार ने मंजूर कर लिया। इस सम्बन्ध में सरदार और माउंटबेटन के बीच हुई बातचीत का एक अंश बहुत मज़ेदार है[1]—

सरदार : आप यदि पेड़ पर से सारे सेव तोड़कर टोकरी में मुझे दें तो मैं ले लूंगा पर यदि सबके सब सेव न हुए तो नहीं लूंगा।

माउंटबेटन : आप मेरे लिए एक दर्जन तो छोड़ देंगे न ?

सरदार : ये तो बहुत अधिक हुए। मैं आपको दो दूंगा।

माउंटबेटन : बहुत कम होंगे।

कॉलिन्स और लापियर ने लिखा है कि कुछेक मिनिट तक ये दोनों अमेरिका की आबादी के दो-तिहाई इतने लोगों से भरे देशी राज्यों की बाबत कालीन के व्यापारी की तरह मोल-भाव करते रहे। अन्त में वे '६' के अंक पर सहमत हुए। इस प्रकार ५६५ में से ६ से कुछ अधिक पाकिस्तान में शामिल हों इस पर सहमति हुई। पर इसके बाद भी ५५० से अधिक रजवाड़ों को 'पेड़ पर से तोड़ने' का काम आसान नहीं था। फिर तो वास्तव में ५६० सेवों की टोकरी सरदार को देने का बीड़ा माउंटबेटन ने उठाया। १९४७ की २५वीं जुलाई को उन्होंने वाइसराय पद से चेम्बर आफ प्रिंसेज को सम्बोधित किया। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और दूरगामी परिणामों वाली राजनीतिक घटना थी। उन्होंने राजाओं से स्पष्ट शब्दों में कहा कि १५वीं अगस्त १९४७ के बाद, वे ब्रिटिश तख्त के प्रतिनिधि के रूप में समाधान के प्रयास नहीं कर सकेंगे। जो राजा शस्त्र संग्रह करके आगे मुश्किलें खड़ी

---

१. लारी कॉलिन्स और डामिनिक लापियर : 'फ्रीडम एट् मिडनाइट', विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि०, दिल्ली, बम्बई, पृ० १८३।

करना चाहते थे उन्हें भी उन्होंने स्पष्ट चेतावनी दी कि वे शस्त्र बेकार सिद्ध होंगे। यदि एकीकरण स्वीकार्य होगा तो सरदार और कांग्रेस उन्हें संप्राप्त मान सम्मान या खिताबों के बीच नहीं आयेंगे, ऐसा आश्वासन भी दिया। यहाँ यह याद रखना होगा कि माउंटबेटन केवल ब्रिटिश तख्त के प्रतिनिधि ही नहीं थे बल्कि ब्रिटिश राजा के चचेरे भाई भी थे अतः उनके शब्दों का वज़न ज्यादा और भी था।

महाराजा और सरदार

१९४७, १५वीं अगस्त के दिन भारत आजाद हुआ, तब हैदराबाद जूनागढ़ और काश्मीर के अलावा अन्य सभी राज्यों ने भारत में शामिल होने के लिए हस्ताक्षर कर दिये थे। जनाब जिना को माउंटबेटन के प्रति नाराजगी हो, यह स्वाभाविक था। जिना तो पाकिस्तान के साथ शामिल न होना चाहे ऐसे राज्यों को स्वतन्त्र रखने को भी तैयार थे। वे भारत में शामिल होने के इच्छुक राज्यों को किसी भी शर्त पर अपनी ओर मोड़ने का प्रयत्न करते थे। इनमें मुस्लिम शासकों वाले राज्य (जैसे हैदराबाद, जूनागढ़ और भोपाल) तो थे ही, इनके अलावा पाकिस्तान के पास वाले जोधपुर, जैसलमेर जैसे राज्य भी थे। बात यहीं समाप्त नहीं होती। देश के बीचोबीच स्थित हिन्दू शासक (जैसे इन्दौर और त्रावंकोर) स्वतन्त्र रहें ऐसे प्रयत्न भी जिना साहब ने किये। त्रावंकोर के दीवान ने तो अपने ट्रेड एजेंट पाकिस्तान में नियुक्त करने की घोषणा भी कर दी थी। स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव जैसे उत्तम अपवादों को छोड़कर देश के अधिकतर महाराजा और नबाब अंग्रेजों की खुशामद करने में और उन्हें किसी भी प्रकार रिझाने के लिए गुपचुप प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। जब प्रिंस आफ वेल्स (बाद में आठवें एडवर्ड) भारत आये तब एक महाराज ने हुक्म दिया था कि प्रिंस की चाय का पानी रुपयों के चालू नोटों को जलाकर गर्म किया जाय। कॉलिन्स और लापियर ने नोट किया है कि प्रत्येक महाराजा तकरीबन

११ खिताब, ५.८ पत्नियाँ, १२.६ बच्चे, ९.२ हाथी, २.८ निजी रेलवे सैलून, ३.४ रोल्स रायस मोटर गाड़ियाँ और २२.९ शेरों का शिकार करने का गौरव धारण करते थे। हैदराबाद और काश्मीर जैसे राज्य तो आबादी और क्षेत्रफल में पश्चिमी यूरोप के अनेक राष्ट्रों से भी बड़े थे।

सरदार पटियाला, बड़ौदा और बीकानेर जैसे अग्रगामी महाराजाओं और उनके प्रधान मन्त्रियों के सम्पर्क में थे। बड़ौदा के वी० टी० कृष्णा-मचारी भी सरदार के अधिकतर विचारों से सहमत थे और सरदार के विश्वास पात्र थे। इसी प्रकार सरदार ने जाम साहब ऑफ नवानगर को भी मना लिया था। केवल काठियावाड़ में ही २१७ राज्य थे। भारत के बहुत से राजा महाराजा जाम साहब को बुजुर्ग मानते थे। और उन्हें 'अंकल' कहते थे। वर्षों पूर्व जब सरदार ने भाव नगर से वार्ता की थी तब उनके विरुद्ध जो प्रपंच हुआ था उसके लिए जामसाहब भी जिम्मेदार थे, कांग्रेस के मंडलों में ऐसी मान्यता थी। पैंतरा बदलकर कैसे वह प्रपंच निष्फल बनाया गया था इसका विवरण मद्रास के भूतपूर्व राज्यपाल श्री के० के० शाह ने वर्षों पूर्व मुझे दिया था। एकीकरण की बाबत अन्य राजाओं के साथ ही जाम साहब भी गुप्त वार्ताएँ चला रहे थे, ऐसी सूचनाएं सरकार को मिलती रहती थीं। ऐसी परिस्थिति में सरदार ने जाम साहब के भाई मेजर जनरल हिम्मत सिंह जी के साथ बात करने का निर्णय किया। हिम्मत सिंह जी में राष्ट्र भावना थी और साथ ही वे सरदार के प्रशंसक थे। उन्होंने सरदार से कहा कि जामसाहब को जीतना हो तो महारानी को मना लेना होगा। सरदार ने तय किया कि दोनों से एक साथ मिलना चाहिए। कड़वा अतीत भूल कर सरदार ने हिम्मत सिंह जी द्वारा जामसाहब को अपने यहाँ दोपहर का भोजन करने का निमंत्रण भेजा। जाम साहब और महारानी सरदार के निवास स्थान पर (१, औरंगजेब रोड, दिल्ली) पर आये तब

सीढ़ियों तक जाकर सरदार ने अपने लाक्षणिक स्मित के साथ उनका स्वागत किया। तीनों व्यक्तियों ने विस्तारपूर्वक परिस्थिति की समीक्षा की। सरदार की बातों का जादुई असर हुआ। दोनों पक्षों ने परस्पर विश्वास और सहकार का विश्वास दिया। फिर तो राजाओं को समझाने में जाम साहब की ओर से बहुत मदद मिली। वी० पी० मेनन को भी बाद में जाम साहब ने आवश्यक सहकार प्रदान किया और अपना विमान जब भी जरूरत पड़ी तब तुरत दिया। देश के हित के लिए सरदार अपनी नापसंदगी दूर रख कर, हर तरह की कड़वी बातें भूल जाकर क्षमावान बन सकते थे, यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है।

सरदार की राजनीतिज्ञता की कल्पना की जा सके इस हेतु एक घटना जानने लायक है। भोपाल के नवाब और इन्दौर के महाराज के बीच एक ऐसा समझौता हुआ था कि जो कुछ करेंगे उस पर साथ मिलकर निर्णय लेंगे। दोनों ही भारत में शामिल होने के मूड में नहीं थे। वी० पी० मेनन की अनेक मुलाकातों के बाद भोपाल के नवाब के हस्ताक्षर तो मिले पर उन्होंने पन्द्रह अगस्त (१९४७) तक यह बात प्रकट न करने की सरदार से प्रार्थना की। इस घटना के बाद इन्दौर के महाराज को दिल्ली जाना पड़ा। दिल्ली जाते समय उनके मन में शामिल होना या न होना इस बाबत भारी ऊहापोह चल रही थी। उनकी ट्रेन दिल्ली पहुँची तब तक उन्होंने तय कर लिया था कि हस्ताक्षर नहीं करने हैं। सैलून दिल्ली स्टेशन पर रुका और महाराज ने सरदार पटेल को संदेश भेज दिया कि वे महाराज से मिलना चाहें तो स्टेशन आ सकते हैं। सरदार नहीं गये और राजकुमारी अमृत कौर को भेजा। राजकुमारी गांधी जी की शाही अनुयायी थीं। सरदार जानते थे कि जाज्वल्यमान राजकुमारी का होना साक्षात् महाराज के मामले में उपयोगी होगा। महाराज तो राजकुमारी को देखकर हतप्रभ हो गये, कारण यह कि उनकी मुलाकात गुप्त विषय की बाबत थी। राजकुमारी को

देखकर वे खुश तो हुए पर थोड़े परेशान भी हुए। उन्होंने राजकुमारी से पूछा : "मैं यहाँ हूँ यह आपको कहाँ से पता चला ?"

राजकुमारी को थोड़ा समय तो लगा पर अन्त में वे महाराज को भारत में शामिल होने के लिए मना सकीं। महाराज राजकुमारी के साथ सरदार से मिलने जाने के लिए सहमत हुए पर उनकी उलझन का अंत नहीं था। वे अभी भोपाल के नबाब की आन में से मुक्त नहीं हुए थे। भोपाल के नवाब ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि वे हस्ताक्षर नहीं करेंगे और १९४७ की पन्द्रह अगस्त को राज्य को स्वतन्त्र घोषित करेंगे। भोपाल और इन्दौर पड़ोसी राज्य थे और नवाब सोचते थे कि दोनों मिलकर भारत सरकार के दबाव का सामना कर सकेंगे। महाराज पटेल के यहाँ राजकुमारी के साथ पहुँच गये तब उन्होंने सी० सी० देसाई से कहा कि वे भोपाल के नवाब से मिलने के बाद ही हस्ताक्षर कर सकेंगे। सी० सी० देसाई ने महाराज को सूचित किया कि भोपाल के नवाब ने तो हस्ताक्षर कर दिये हैं। पर महाराज यह बात मान कैसे लेते ? उन्होंने कहा : 'ऐसा हो कैसे सकता है ? दो दिन पहले ही तो अभी नवाब ने मुझसे स्वतन्त्र रहने के निर्णय की बात की है।' अन्त में उन्हें भोपाल के नवाब का हस्ताक्षर युक्त मसविदा दिखाया गया और महाराज ने कुछ भी कहे बिना अपने हस्ताक्षर कर दिये।

ऐसे तो अनेक प्रसंग हैं जिन्हें सुनाकर सरदार की चतुराई और प्रत्युत्पन्न मति का हवाला दिया जा सकता है, परन्तु विस्तारभय से मैं ऐसा नहीं कर रहा हूँ। विकट परिस्थिति में शिथिल होने के बदले परिस्थिति का आवाहन झेल लेने की ठंडी ताकत सरदार में थी। वे चतुर जरूर थे, पर कितने ही बुनियादी नीति नियमों की लक्ष्मण रेखा का सम्मान करते थे। प्रमाण स्वरूप अल्पज्ञात एक प्रसंग सुनाकर सरदार द्वारा स्वयं स्वीकृत अनुशासन का कैसा आदर्श था इसका उल्लेख करना चाहूँगा।

सामान्य रूप से ऐसा नियम स्वीकृत हुआ था कि आबादी के आँकड़े और भौगोलिक सीमाओं को मद्देनज़र रखकर प्रत्येक राज्य भारत या फिर पाकिस्तान में शामिल हो सकेगा। भारत ने इस सिद्धान्त का पालन किया था। सरदार के सामने कुलात के खान ने और बहावलपुर के नवाब ने भारत में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की थी। कलात मुस्लिम बहुल राज्य तो था ही भौगोलिक दृष्टि से भी पाकिस्तान में पड़ता था। बहावलपुर सरहद पर स्थित था यह सही है पर उसकी आबादी अधिकतर मुसलमानों की थी। सरदार विश्वसनीय मुद्दों पर पाकिस्तान के साथ व्यर्थ का टकराव टालना चाहते थे। उन्होंने इन दोनों मुसलमान राजाओं को समझाया कि उनका भविष्य पाकिस्तान के साथ है। यदि जनाब जिना ने इतनी विश्वसनीयता दिखायी होती तो उन्होंने जूनागढ़ के नवाब को पाकिस्तान में शामिल होने के सलाह न दी होती। यहाँ यह भी जान लें कि लार्ड माउंटबेटन ने तो जूनागढ़ का प्रश्न यू० एन० ओ० में ले जाने की सलाह दी थी, जिसको सरदार ने नामंजूर कर दिया था। अपने कुत्ते कुतिया की शादी धूमधाम से मनाने में जूनागढ़ के नवाब ने उस जमाने में साठ हजार पाउंड खर्च किये थे। शामलदास गाँधी के नेतृत्व में 'आरजी हुकूमत' बनी और जूनागढ़ सरदार की कुशलता की जीवंत यादगार के रूप में भारत में बना रहा।

सरदार ने भारी कुशलता से हैदराबाद का प्रश्न भी सुलझाया। हैदराबाद (द अल्सर इन द अब्डोमेन आफ इंडिया) और जूनागढ़ की समस्या सुलझी तब भारत के नक्शे को सच्चा आकार प्राप्त हुआ। एकीकरण के बाद पहली बार सरदार हैदराबाद गये तब हवाई अड्डे पर निजाम को सरदार ने 'हिज़ एक्जाल्टेड हाइनेस' कह कर उनके प्रति पूरी उदारता प्रदर्शित की। सरदार की खूबी यही थी कि जिनके राज उन्होंने तकरीबन छीन लिये उन सबको अन्य राष्ट्रीय नेताओं की तुलना

में उन पर अधिक विश्वास था। भावनगर के महाराज ने एक बार कहा था कि सरदार से मुलाकात होती है तब मानो पिता से मिल रहे हों ऐसे भाव मन में उत्पन्न होते हैं।

आजादी मिली तब भारत की हालत उस खेत जैसी थी कि खेत बड़ा तो था पर उसमें एक-एक दो-दो बिस्से के छोटे बड़े अनेक टुकड़े थे। यह एक ऐसा खेत था जिसकी मेड़ और सीमाएँ स्पष्ट नहीं थीं और बीच में में आये टुकड़ों के चारों ओर बाड़ तो थी ही। सरदार ने आड़ी-तिरछी फैली बाड़ों को बहुत कम समय में छाँट दिया और भारत के नक्शे को बचा लिया। यह एक ऐसा काम था जो मानो सरदार के लिए ही कालदेवता ने तैयार किया था। यह काम पूरा हुआ न हुआ कि सरदार की तबियत बिगड़ी। काश्मीर का मसला उलझ गया था पर इसमें सरदार ने पंडित जवाहरलाल जी की इच्छा का सम्मान करने का निश्चय किया था। यदि सरदार ने हैदराबाद और जूनागढ़ के लिये भी जवाहरलाल की इच्छाओं पर ध्यान दिया होता तो आज इन दोनों राज्यों का प्रश्न भी यू० एन० ओ० में होता।

काश्मीर की नाजुक ताँत

काश्मीर की चर्चा न करें तो एकीकरण की कथा अधुरी ही मानी जायेगी। काश्मीर देशी राज्य तो था पर उसका कामकाज पंडित नेहरू सम्भालते थे। काश्मीर का प्रश्न यू० एन० ओ० में ले जाने की बाबत भी सरदार सहमत नहीं थे। फिर भी जवाहरलाल यू० एन० ओ० में गये। यू० एन० ओ० में काश्मीर की चर्चा के समय भी जवाहरलालजी जब श्री गोपालस्वामी आयंगर और शेख अब्दुल्ला को भेजने को तत्पर हुए तब सरदार ने उन्हें चेताया। शेख अब्दुल्ला पर सरदार को तनिक भी विश्वास नहीं था। आयंगार अनुभवी कारभारी थे और काश्मीर के

जानकार भी थे पर पाकिस्तान के सर जफरुल्ला[१] खाँ के सामने कमजोर पड़ते। सरदार की आदमी पहिचानने की शक्ति की बाबत तो अलग से ही एक पुस्तक लिखनी पड़ेगी। उनकी एक्स-रे जैसी नज़र आदमी को आरपार देख लेती थी। इस मामले में पंडित नेहरू बिलकुल विपरीत थे। सरदार केवल आदमी का एक्सरे ही नहीं, परिस्थितियों का कार्डियोग्राम भी तुरत ही निकाल लेते थे और तत्काल उचित निर्णय ले सकते थे। ब्रिगेडियर सेन ने 'स्लेंडर वाज़ द थ्रेड' नामक पुस्तक लिखी है। भारतीय सेना अक्तूबर १९४७ के अन्त में श्रीनगर पहुँची, उसके दो-तीन दिन बाद सरदार पटेल तत्कालीन रक्षा मन्त्री सरदार बलदेवसिंह के साथ श्रीनगर गये। सेन जिस समय काश्मीर की परिस्थिति की बाबत बात कर रहे थे सरदार आखें मूंदकर बैठे थे। सेन को लगा कि वे वृद्ध पुरुष हैं अस्तु शायद ऊँघ गये हैं। अतः उन्होंने बलदेवसिंह को सम्बोधित करके बातें करना शुरू कर दिया। अन्त में जब ब्रिगेडियर सेन ने पूछा : "मुझे क्या करना चाहिए ? श्रीनगर का बचाव या घुसपैठियों का मुकाबला ?" बलदेवसिंह कुछ कहें इससे पहले सरदार ने कहा 'दोनों'। फिर सेन ने कहा कि इस हेतु उनके पास पूरे साधन या आदमी नहीं हैं। सरदार ने 'क्या चाहिए' इसकी सूची बनाने को कहा। ज्यों ही सूची सरदार के हाथों आयी, वे दिल्ली जाने को तैयार हो गये। सेन ने उन्हें हवाई अड्डे तक पहुँचाने के लिये ज्यों ही अपनी कार का दरवाजा खोला, सरदार ने कहा : "आप अपना काम कीजिये, वक्त बरबाद करने की जरूरत नहीं है, ड्राइवर मुझे

१. सन् १९६६ में लन्दन के केम्ब्रिज स्ट्रीट स्थित ऑक्सफोर्ड हाउस होटल में पूरे तीन दिन तक सर जफरुल्ला खां के साथ रहने का अवसर मुझे मिला। नित्य नाश्ते की मेज पर उनके साथ बहुत सी बातें हुई पर काश्मीर के प्रश्न को छोड़कर। इस प्रश्न की पूरी जानकारी न होने के कारण मेरी हिम्मत नहीं हुई।

—लेखक

छोड़ आयेगा।" सरदार ने श्री सेन द्वारा माँगी गयी सहायता दिल्ली जाकर, उन्होंने कहा था उससे भी कम समय में, श्रीनगर पहुँचा दी। सरदार में विद्यमान ऐसी प्रत्युत्पन्नमति के दर्शन अनेक स्थलों पर होते हैं।

अशोक तथा अकबर के समय में भी नहीं था ऐसा 'अखंड भारत'—यह एक ऐसा ऐतिहासिक कृत्य है जिसकी मिसाल दुनिया के इतिहास में ढूंढे से नहीं मिलेगी। बारडोली ने देश को 'सरदार' भेंट किये थे। देशी राज्यों का भारत में विलीनीकरण करके सरदार ने इस विरुद को पुनः सार्थक और सुशोभित किया। दुर्गादास ने सरदार पटेल विश्वविद्यालय में व्याख्यान दिया तब जो शब्द कहे थे वे सत्य प्रतीत होते हैं—"गान्धीजी एण्ड वल्लभ भाई पटेल कार्वड आउट डेस्टिनी फार देमसेल्व्स। जवाहर लाल नेहरू वाज़ चाइल्ड ऑफ डेस्टिनी, लाल बहादुर शास्त्री वाज़ थ्रोन अप बाई डेस्टिनी, इन्दिरा गांधी इज द इंस्ट्रूमेंट ऑफ डेस्टिनी।"[1]

भूतपूर्व उपप्रधान मन्त्री श्री जगजीवन राम जब सन् १९५० में लन्दन में लार्ड माउंटबेटन से मिले तब माउंटबेटन द्वारा कहे शब्दों का उल्लेख करके मैं अपने भाषण का दूसरा खण्ड पूरा करूंगा। माउंटबेटन ने कहा था कि, एक अखण्ड राष्ट्र बनाने में भारत को पन्द्रह वर्ष लगेंगे, ऐसा वे मानते थे, पर सरदार ने ऐसा चमत्कार दस-बारह महीने में ही कर दिखाया।

इतिहास के निर्माता को इससे बड़ी भव्य अंजलि दूसरी कोई हो सकती है क्या ?

३. वज्रादपिकठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

कुछ ही वर्षों पूर्व प्रधान मन्त्री इन्दिरा जी ने सरदार को भारतीय आकाश में प्रकाशमान एक अत्यन्त तेजस्वी नक्षत्र के रूप में वर्णित

---

१. दुर्गादास, 'सरदार पटेल : द पालीटीशियन एण्ड द स्टेट्समैन', सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर, १९७२, पृ० ४।

करके सरोजिनी नायडू द्वारा सरदार के लिए कहे गये शब्दों का उल्लेख किया था। सरोजिनी नायडू ने सरदार को 'लोहे की मंजूषा में रखा सुवर्णरत्न' बताया था। मुझे तो एक कदम आगे बढ़कर यह कहने की इच्छा होती है कि वे पत्थर के गमले में उगे सुकोमल पुष्प जैसे थे (या भवभूति के शब्दों में 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'—वज्र से कठोर, कुसुम से कोमल थे—अनु०) उनके बारे में अनेक गलत फहमियाँ प्रचलित हैं। उनका रहस्य भी वज्र से कवच में छिपी कोमलता में ही निहित है। सरदार के जीवन में झाँके तब इस बात का घ्यान आता है। इतिहास के निर्माता में आवश्यक आन्तरिक शक्ति का सरदार के निजी और बाह्यजीवन में दर्शन होता है। इस शक्ति में मुझे तो धरती का नमक प्रकट होता दिखता है। बालमुकुन्द दवे ने अपने एक काव्य में सरदार को 'वज्रपुष्प' कहा है, वह सही है।

मतभेद पैदा हुए इससे पूर्व सरदार और नेहरू के सम्बन्ध एक दूसरे के पूरक थे। जब स्वराज्य मिला उस अवधि के अत्यन्त कठिन दिनों में यह सम्बन्ध देश के लिए उपकारक सिद्ध हुआ। दोनों के व्यक्तित्व में विद्यमान बुनियादी विभिन्नताओं की बाबत 'फ्रीडम एट मिडनाइट' में मजेदार उल्लेख है : "पटेल ऐसे औद्योगिक शहर से आये थे जो मशीनों, कारखानों और वस्त्र-उद्योग का केन्द्र था। नेहरू ऐसे स्थान से आये थे जहाँ लोग फूल और फल उगाते हैं।" इसी पुस्तक में आगे एक उल्लेख आया है कि पटेल ममत्वपूर्ण आदमी थे, पर वे ममता को, दुनिया देख सके इस प्रकार बाहर प्रगट नहीं होने देते थे। स्वराज्य मिलने के बाद की अवधि में नेहरू और सरदार के बीच के मतभेद चरम सीमा तक पहुँच गये थे। कितने ही बिनु काज दाहिनेहु बायें लोगों ने भी इसमें ठीक-ठीक भूमिका निभायी, ऐसा श्री के० के० शाह से ज्ञात हुआ। एस० गोपाल ने नेहरू की जीवनी लिखी है। उसमें एक घटना अंकित है। १९४७ की चौथी अगस्त को जवाहरलाल जी ने स्वतन्त्र

भारत के प्रथम मंत्रिमण्डल की सूची माउंटबेटन के सामने पेश की, इससे पूर्व दिल्ली में एक अफवाह यह थी कि नेहरू सरदार को मंत्रिमण्डल में शामिल करना नहीं चाहते, परन्तु माउंटबेटन की सलाह मानकर उन्होंने सरदार को शामिल करना मंजूर किया। पर यह अफवाह एकदम बेबुनियाद थी। सच बात तो यह थी कि पहली अगस्त को जवाहरलाल जी ने सरदार को खास पत्र लिखकर सूचित किया : 'यह लिखना थोड़ा औपचारिक ही कहा जायगा क्योंकि आप तो मंत्रिमण्डल के सबसे मजबूत स्तम्भ हैं।'[1] सरदार ने जबाब में लिखा :

"मेरी सेवाएँ आपके लिए जब चाहें उपलब्ध होंगी। मैं आशा करता हूँ कि मेरी बाकी की जिन्दगी के लिए आप मेरी सम्पूर्ण वफादारी और निष्ठा, ऐसे ध्येय के लिये पायेंगे कि जिस ध्येय के लिये आपसे अधिक त्याग किसी ने नहीं किया है। हमारा सम्बन्ध अटूट है और इसी में हमारी ताकत सन्निहित है।"[2]

बात यह हुई कि यह अफवाह माउंटबेटन तक पहुँच गयी, पर उन्होंने जवाहरलाल से इस विषय में कुछ भी नहीं कहा, कारण यह कि जवाहरलाल द्वारा प्रस्तुत मंत्रिमण्डल की सूची में सरदार का नाम तो था ही, साथ ही सरदार को उपप्रधान मन्त्री बनाया गया था।

सरदार भारत के प्रधानमन्त्री नहीं बने

आजाद भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री जवाहरलाल बनें ऐसी गांधी जी की इच्छा थी इस कारण सरदार ने यह बात अपार उदारता के साथ स्वीकार कर ली। सरदार उम्र में नेहरू से काफी बड़े थे, अतः नेहरू के बाद प्रधानमन्त्री होने की सम्भावना का अंश भी उड़ जाता

---

१. एस० गोपाल : नेहरू, खण्ड १, हाडसन, पृ० ३८९।

२. सरदार पटेल्स करेसपाण्डेंस : खण्ड ४ (अहमदाबाद, १९७२), पृ० ५३७।

था। यह तो सर्वविदित बात है कि कांग्रेस का प्रबल समर्थन सरदार के पक्ष में था। ऐसे संयोगों में सरदार ने जो अपूर्व त्यागवृत्ति प्रकट की उसकी कथा इतिहास के पन्नों में सुवर्णाक्षरों में लिखी जायगी। आज की राजनीति की तासीर देखें तो सवाल उठता है कि आज का कौन सा नेता अनुकूल संयोग और पूरा समर्थन प्राप्त होने पर तब ऐसा अच्छा अवसर हाथ से जाने देगा ? सरदार में विद्यमान सैनिकपन इस सन्दर्भ में अत्यन्त कठोर कसौटी पर घिसा जाकर सौ फीसदी खरा सोना सिद्ध हुआ।

ता० २७-७-१९८२ के दिन डुमस में मुरब्बी मोरारजी भाई से 'सरदार साहेब' की बाबत पूरे ढाई घण्टे खूब खुलकर बात हुई। मोरारजी भाई उस दिन मूड में थे और बन्द कमरे में केवल हम दो ही लोग थे। मौका देखकर मैंने उनसे पूछा "सरदार के बदले नेहरू स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री बने इस सम्बन्ध में, इतने वर्षों बाद आपको क्या अनुभव होता है ?" मोरारजी भाई ने जो जवाब दिया वह मैं (मेरे अपने शब्दों में) याददाश्त के बल पर प्रस्तुत करता हूँ। उन्होंने कहा था—आज कहा जा सकता है कि जो हुआ सो अच्छा हुआ। इस बाबत तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं :

१. यदि सरदार प्रधानमन्त्री बने होते तो कांग्रेस का विभाजन हो गया होता। जवाहरलालजी ने समाजवादी पक्ष की स्थापना की होती। आजादी मिली उसके बाद के दिनों में कांग्रेस की एकता देश के लिये बहुत जरूरी थी।

२. आजादी मिलने के बाद सरदार बहुत कम दिन जिये।

३. यदि सरदार प्रधानमंत्री बने होते तो राज्यों के एकीकरण का महान कार्य जो उन्होंने किया वह दूसरे किसी से न हो सकता। वह काम विकट था और सरदार ही उसे कर सके।

सरदार और नेहरू

१९४८ की जनवरी में सरदार और नेहरू के बीच मतभेद खूब ही बढ़े और काठियावाड़ की यात्रा पर जाने से पहले सरदार ने गान्धी जी को पत्र लिखकर पद-त्याग करने की इच्छा व्यक्त की। माउंटबेटन को पता चला कि नेहरूजी के कहने से गान्धी जी सरदार के त्यागपत्र की बाबत विचार कर रहे हैं। माउँटबेटन ने गान्धी जी को स्पष्ट बताया कि यह कदम अत्यन्त नासमझी का माना जायगा। देश की उन दिनों की परिस्थिति में सरदार और नेहरू साथ रहें यह बहुत ही जरूरी था और नेहरू सरदार के बिना काम नहीं चला सकेंगे, ऐसी माउंट-बेटन की मान्यता थी। गान्धी जी भी सरदार और नेहरू की जोड़ी बनी रहे, इस बात का महत्व समझने। एस० गोपाल ने लिखा है : "दो माउँटबैटन हैड ए ग्रेटर पर्सनल लाईकिंग फॉर जवाहरलाल, इट इज़ क्लियर दैट ही फाउण्ड इट ईज़ीयर टु वर्क विथ पटेल। फ्राम द स्टार्ट दे अंडरस्टुड ईच अदर।"[1]

१९४८ की बीस जनवरी को गांधीजी की प्रार्थना सभा में बम फूटा और सरदार गुजरात की यात्रा छोड़कर दिल्ली की ओर दौड़ पड़े। गांधीजी ने अपने मन में चल रही उलझनों की बात सरदार को बतायी। सरदार ने अपना मत प्रगट करने के बदले इतना ही कहा कि जो हो गया है, उस बाबत विस्तार से बात होनी चाहिये। गांधी-जी सहमत हुए और सरदार पटना हो आवें उसके बाद मिलने की बात तय हुई। ३० वीं जनवरी को सरदार गान्धीजी से मिलने चार बजे बिरला हाउस गये और पूरे पाँच बजकर दस मिनिट तक उन्होंने गान्धीजी से खुलकर बात की। सभी गलतफहमियाँ दूर हो गयीं और गान्धीजी ने कहा कि दूसरे दिन तीनों जन मिलकर बात करेंगे और

---

१. एस गोपाल : नेहरू, खण्ड १, पृ० ३६०

सब ठीक हो जायगा। पर यह मुलाकात अन्तिम सिद्ध हुई और कुछ ही सेकेण्डों बाद गान्धीजी की हत्या हो गयी। जो काम गांधीजी करना चाहते थे वह उनकी मृत्यु के बाद थोड़ी ही देर में हो गया। माउंटबेटन ने सरदार और नेहरू को साथ बैठाकर दोनों से एक साथ मिलजुल कर काम करने का वचन लिया। सरदार और नेहरू की अन्योन्य-पूरकता पुनः देश के लिये उपयोगी बनी रही और अनेक मतभेदों, मनभेदों और मनदुखों के बीच भी सरदार के अंत काल तक बनी रही।

यहाँ मैं एक बात का उल्लेख करने का लोभ नहीं टाल सकता। सरदार ने तिब्बत की बाबत चीन की नियत ठीक नहीं है इस आशय का पत्र सातवीं नवम्बर १९५० को जवाहरलाल जो को लिखा था। इस पत्र के विस्तार में जाने का इस समय अवकाश नहीं है। यह पत्र सरदार की दूरंदेशिता, राजनीतिज्ञता और विश्व राजनीति की शतरंज की बाबत दाँवपेच की जानकारी का स्थायी दस्तावेज़ बन कर इतिहास के पन्नों में सुरक्षित रहेगा। बाद के वर्षों में हुई घटनाओं ने साबित कर दिया कि चीन की बाबत सरदार ने नेहरू को जो चेतावनी दी थी वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। सरदार और नेहरू की बाबत बात पूरी करने से पहले दोनों के जीवन में समानान्तर दिखने वाली तीन बातों की ओर इंगित मात्र करना चाहूँगा—

१. दोनों ने जीवन में पत्नी सुख जल्द ही खो दिया।
२. दोनों ने अपने जीवन के एकाकीपन को स्वराज्य यज्ञ में होम कर दिया।
३. दोनों की बेटियों ने जीवन भर उनकी देखभाल की।

सरदार और जयप्रकाश

सरदार और नेहरू के बारे में चर्चा करने के बाद सरदार और जयप्रकाश जी की बाबत एक-दो बातें करना चाहता हूँ। सरदार

जीवित थे तब जयप्रकाश जी ने उनकी आलोचना करने में कुछ भी बाकी नहीं रखा था, पर सरदार के जाने के अनेक वर्षों के बाद सरदार के लिये जयप्रकाशजी ने जो कुछ कहा, उसमें सरदार और जयप्रकाश दोनों की महानता व्यक्त होती है। जयप्रकाश ने कहा :

"ऐसे ही अवसर पर उन्होंने सरदार के प्रति कैसा अन्याय किया था इसको खुलेआम कबूल करके राजाजी ने अपना दिल हल्का किया था, यह बात प्रकाशवीर जी ने अभी ही याद दिलायी है। मेरी स्थिति भी ऐसी ही है ऐसा मुझे लगता है। आज मेरी प्रबल भावना पश्चात्ताप की है, कारण यह कि उनके जीवन काल में मैं केवल सरदार का आलोचक ही नहीं, विरोधी भी था। स्वतन्त्रता की हलचल के बीच उनके नेतृत्व के प्रति मेरे मन में अत्यधिक प्रशंसा और आदर की भावना थी तथापि भारत समाजवाद का मार्ग अपनाये इसकी कामना करने वाले हम कांग्रेसी-समाजवादी सरदार को प्रतिक्रियावादी और पूंजीवाद का रक्षक और ठीकेदार मानते थे। सरदार हमसे नाराज थे कारण यह कि मार्क्सवादी ढंग से मैं गांधी जी के विचारों की आलोचना और विरोध करता था। यद्यपि मुझे कहना चाहिए कि मैं गांधी जी के प्रति आदर ही नहीं पूज्य भाव भी रखता था। स्वराज्य मिलने के बाद उन्होंने (सरदार ने) जिस कुशलता से राज्यों का शान्तिपूर्वक और राजाओं की सहमति से भारत में विलीनीकरण किया वह एक अनूठी घटना है—केवल कश्मीर की समस्या पंडित नेहरू पर छोड़ी गयी थी जो इस देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण धटना बनी रही—बहुत से अनुभवी देश-नेता मानते हैं कि सरदार उसका सन्तोषप्रद हल निकाल सके होते (और यह सरदार के विभाग का विषय था) और इस तरह उसे भारत और पाकिस्तान के बीच कटुता और शत्रुता बनाये रखने वाला स्थायी सिर–दर्द बनने से रोक सके होते। मुझे बताया गया है कि कांग्रेसी मण्डलों में जवाहरलाल जी विदेशी मामलों के विशेषज्ञ माने

जाते हैं, पर दो-तीन साल पहले क० मा० मुंशी के 'भवन्स जर्नल' में सरदार का तिब्बत की बाबत जवाहरलाल जी को लिखा पत्र छपा था वह मैंने पढ़ा तब मुझे इस व्यक्ति की महानता का आभास हुआ। जिस बाबत वे (सरदार) विशेषज्ञ नहीं माने जाते थे उस विषय में भी उनकी अद्वितीय पकड़ देखकर मैं दंग रह गया। पिछले कुछेक वर्षों का इतिहास देखकर मुझे इतना समझ में आया है कि यदि जवाहरलाल जी ने सरदार की सलाह मानी होती तो चीन का भय जैसा आज है वैसा न होता। जब तक देश की लगाम सरदार के लौह करों में थी तब तक समाजवादी, साम्यवादी और कांग्रेस के वामपंथी भी शिकायत करते थे कि देश के आर्थिक और सामाजिक ढाँचे को बदलने में सरदार नेहरू के आड़े आते हैं। ऐसा मुझे अनेक जिम्मेदार मुख्यमंत्रियों से भी सुनने को मिला था, पर सरदार के निधन के बाद नेहरू को कुछ कर दिखाने को १३-१४ वर्ष मिले। कांग्रेस के सुज्ञात लक्ष्यों में थोड़ी सी शाब्दिक फेरबदल के अलावा समाजवाद की ओर अधिक प्रगति न हो सकी। आज हर कोई यह बात साफ-साफ देख सकता है।"[१]

सरदार का समाजवाद

समाजवाद की बात निकली है तो इस सम्बन्ध में सरदार के क्या विचार थे यह भी देख लें। सरदार समाजवादियों के वितंडावाद का बहुधा भारी उपहास करते थे। एक बार उन्होंने कहा था :

"हमें बताया जाता है कि ब्राह्मणों की ८४ जातियाँ हैं, पर जिस प्रकार समाजवादी झगड़ते हैं उसे और उनके मतभेदों को देखते हुए मुझे लगता है कि समाजवादियों की ८५ जातियाँ होनी चाहिए।"[२]

---

१. दुर्गादास, 'सरदार पटेल' (अंग्रेजी में), सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर, १९७२, पृ० ३८।

२. डी वी त्हमाणकर, सरदार पटेल, जार्ज अलेन एंड अनविन, १९७०, पृ० २७७।

एक पत्रकार ने सरदार से समाजवाद के विषय में पूछा। सरदार ने उत्तर दिया : "गांधीजी के आश्रम में पहला सिद्धान्त होता है—सम्पत्ति का समूल उच्छेदन। यह समाजवाद है, सच है न ?" एक बार वे पूंजीपतियों के मित्र हैं ऐसा आरोप करनेवालों को उन्होंने सुनाया कि वे गरीबों तथा समाजवादियों के भी मित्र हैं। फिर जोड़ा—"पर बहुत से लोग जो समाजवाद की तोता रटन्त करते हैं, उनके पास है उतनी भी मेरे पास अपनी कोई सम्पत्ति नहीं है।"

सरदार आदर्श के पीछे पागल नहीं थे पर इसका मतलब नहीं कि उनके जीवन में आदर्श का कोई स्थान ही नहीं था। उनका समाजवाद जीवन की वास्तविकता के साथ मेल खानेवाला था। उन्हें समाजवाद के शास्त्रार्थ में रुचि नहीं थी। सरदार का समाजवाद कैसा था, यह समझने के लिये महावीर त्यागी द्वारा वर्णित एक प्रसंग का जायज़ा लें।[1]

"एक बार मणिबहन उन्हें कोई दवा पिला रही थीं। मेरे आने-जाने पर रोक-टोक नहीं थी अतः मैं अन्दर पहुँच गया। अन्दर घुसते ही मैंने देखा कि मणिबहन की साड़ी पर एक थिगड़ा लगा था और अच्छा-खासा बड़ा-सा थिगड़ा था। मैंने जोर से कहा : "मणिबेन, आप तो अपने-आपको बड़ा मानती हैं। जिन्होंने एक वर्ष में इतना बड़ा अखण्ड चक्रवर्ती राज्य स्थापित कर दिया है, इतना बड़ा राज्य तो रामचन्द्रजी का या कृष्णजी का नहीं था, अशोक का भी नहीं था और अकबर का भी नहीं और अंग्रेजों का भी नहीं। सो इतने बड़े राजा-महाराजाओं के भी सरदार की पुत्री होकर आपको शरम नहीं आती ?"

मणिबहन ने मुँह बिचकाकर गुस्से से कहा : "जो झूठ बोलता हो

---

१. महावीर त्यागी, 'नक्कारखाने में तूती की आवाज', सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, पृ० ९२-९३।

और बेईमानी करता हो उसे शरम आवे, मुझे किस बात की शरम ?" मैंने कहा—"हमारे देहरा गाँव में बाहर निकलिये, देखें। लोग आपके हाथ में आना-दो आना रख देंगे—समझेंगे कि कोई एक भिखारिन जा रही है। आपको शरम नहीं आती कि ऐसी थीगड़ेवाली साड़ी पहनती हैं ?"

मैं तो मज़ाक में कह रहा था। सरदार भी हँसे और बोले—"बाजार में अनेक लोग घूमते रहते हैं। आना-दो आना करके भी बहुत रुपये एकत्र किये जा सकेंगे।"

पर सुशीला नायर ने मुझसे कहा : "त्यागीजी, किसकी बात कर रहे हैं ? सारा दिन एक पल बैठे बिना ये मणिबहन सरदार साहब की चाकरी करती हैं। फिर रोज डायरी लिखती हैं और रोज नियमित चरखा भी कातती हैं। उसमें से जो सूत निकलता है उससे सरदार साहब की धोतियाँ और कुरते बनते हैं। आपकी तरह सरदार साहब कहाँ खादी भण्डार से कपड़े खरीदते हैं ? और सरदार साहब के फटे कपड़ों में से मणिबहन पुनः अपने कपड़े बना लेती हैं।" उस विद्यमान देवी के समक्ष मैं अवाक् हो खड़ा रहा। कैसी पवित्र आत्मा है इन मणिबहन की।—पुनः सरदार बोल उठे : "गरीब आदमी की बेटी है। कहाँ से अच्छे कपड़े लावे ? इसका बाप कहाँ कुछ कमाता है ?"

सरदार ने अपने चश्मे का डब्बा दिखाया। बीस वर्ष पुराना होगा। तीस साल पुरानी घड़ी भी देखी। चश्मे में एक डंडी थी, दूसरी ओर डोरा बाँधा था। कैसी पवित्र आत्मा थी। हमारा कैसा नेता था। उस त्याग-तपस्या की कमाई, हम सब नयी-नयी घड़ी बाँधनेवाले देश-भक्त खा रहे हैं।

यह घटना सुनाने के बाद मुझे सरदार के समाजवाद की बाबत कुछ भी कहने को बाकी नहीं रहा है।

सरदार और साधन-शुद्धि

सरदार साधन-शुद्धि के चुस्त आग्रही नहीं थे ऐसा भी कहा जाता है। इस बाबत सरदार के साथ काम करनेवाले महानुभावों के साथ मेरी विस्तार से बातें हुई हैं। स्वराज्य की लड़ाई के दिनों में साधन-शुद्धि की बाबत गांधी प्रणीत पैमाने इतने ऊँचे थे कि गांधीजी के अलावा दूसरा कोई भी व्यक्ति उस मापदण्ड से हल्का ही ठहरेगा। निजी बातचीत के दौर में ज्ञात हुई दो घटनाएँ उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करूँगा। बारडोली-सत्याग्रह जोर-शोर से चल रहा था। किसी भी गाँव में अंग्रेज अधिकारी हालात की जाँच करने जानेवाला होता तब सरदार एक तरकीब करते। पहले से एक आदमी भेजकर उस गाँव में खादी के कपड़े भिजवा देते जिससे गाँव की स्त्रियों को खादी की पोशाक देखकर उस अंग्रेज को लड़ाई की बाबत लोक-जागृति का आभास हो। निश्चय ही गांधीजी ऐसा नहीं करते—कतई नहीं करते। दूसरा उदाहरण देखें। देशी राज्यों के एकीकरण के समय सरदार ने साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति अपनायी थी। मुझे बुनियादी तौर पर यह जानकारी मिली कि दो राजा अंकुश में नहीं आ रहे थे। उन्हें सरदार ने घंटों तक पीने के पानी बिना प्यासा भी रखा था। सच है कि गांधीजी ऐसा न करते और इस ढंग को मान्यता भी न देते। कांग्रेस के चंदे की बाबत उस जमाने में हिसाब रखा जाता था पर चंदा देनेवाले धन-कुबेर टेढ़े-मेढ़े लाभ की अपेक्षा किये बिना ही त्याग करते थे, ऐसा निरपवाद रूप से नहीं कहा जा सकता। संक्षेप में गांधीजी के मापदंड से देखें तो सरदार की साधन-शुद्धि का आग्रह फीका लगेगा यह सही है, पर इस प्रकार गांधीजी के साथ सरदार की तुलना करना यह उचित नहीं लगता।

गांधीजी तो गांधीजी थे और सरदार सरदार थे। सरदार ने देश के हित में ऐसी कितनी ही जोड़-तोड़ अवश्य की होगी, पर निजी

जीवन में वे कितने जागृत थे, यह जीवन के अन्तिम दिनों में अपने पुत्र डाह्याभाई के साथ उन्होंने जैसा व्यवहार रखा उससे ज्ञात होता है। उन दिनों डाह्या भाई के आर्थिक पराभव इतने गम्भीर नहीं थे कि पिता को सम्बन्ध तोड़ना पड़े। मन्त्रियों और नेताओं के आज के सपूत तो इतना आगे बढ़ गये हैं कि ऐसे डाह्याभाई तो न जाने कितने पीछे छूट जाएँगे। पर सरदार ने घर के मोरचे पर तनिक भी जोड़-तोड़ नहीं किया। हमें अच्छी तरह मालूम है कि अच्छे-खासे नेता लड़कों के और उनकी धमाचौकड़ी के आगे लाचार बन जाते हैं। पर इस बाबत में सरदार एक बित्ता ऊपर थे। पंडित नेहरू ने एक बार श्रीप्रकाशजी से कहा था कि सरदार एक अत्यन्त महान् व्यक्ति थे पर बिड़ला से उनकी दोस्ती अप्रियताजनक थी। बाद के वर्षों में बिड़ला के साथ नेहरूजी का घरेलू सम्बन्ध सरदार को लाँघ जाय ऐसा विकसित हुआ। वी० शंकर लिखते हैं कि नेहरू की सरकार ने बिड़ला के साहसिक अभियानों को बहुत प्रोत्साहन दिया जो उचित था। बिड़ला के आर्थिक साम्राज्य को इतना प्रोत्साहन तो सरदार ने भी नहीं दिया था। सरदार गांधीजी के मापदण्डों को स्वयं पूर्ण रूप से पचा नहीं सके हैं, इस बाबत स्पष्ट जानते थे। इसी सन्दर्भ में बारडोली की विजय के बाद की सभाओं में खुलेआम उन्होंने अपनी मर्यादाओं का उल्लेख किया है। बाद के वर्षों में भी उन्होंने गांधीजी की अहिंसा का सम्पूर्ण पालन का दावा कभी भी नहीं किया। उनसे ऐसी आशा रखनी भी नहीं चाहिए थी। गुनहगार (फिर वह हिन्दू हो या मुस्लिम) के प्रति कड़ाई बरतने में उनका विश्वास था। गुंडों का हृदय-परिवर्तन हो वहाँ तक ठहरने का धैर्य या श्रद्धा उनके पास नहीं थी। साम्प्रदायिक दंगों के समय उनकी नीति सख्ती से काम करने की थी। इसलिए कि यह देश की सुरक्षा का सवाल था। सस्ती लोकप्रियता के लोभ से या अल्पमत की पीठ थपथपा करके अच्छे प्रतीत होने के इरादे से कुछ

करना उनके लिए सम्भव नहीं था। जरूरत होने पर नश्तर लगाकर फोड़े का इलाज करना पड़े तो नासमझ लोगों की परवाह किये बिना भी वे वैसा करने में विश्वास करते थे। उनकी ऐसी मान्यताओं पर कोई प्रश्नचिह्न लगा सकता है परन्तु उनकी न्यायप्रियता तो निजी पसन्द-नापसन्द को डाँककर आदमी का मूल्यांकन कर सकती थी। यह तो विदित है कि डॉ० अम्बेडकर गांधीजी और कांग्रेस के विरोधी थे। वे जब संविधान का मसविदा बनानेवाली समिति के अध्यक्ष बने तब एक कांग्रेसी ने सरदार से पूछा : "गांधीजी और कांग्रेस के विरोधी को इस काम के लिये क्यों चुना गया है ?"

सरदार ने अपनी लाक्षणिकता से जवाब दिया, "आपको संविधान की क्या जानकारी है ? हमने इस काम के लिये श्रेष्ठ व्यक्ति पसन्द किया है।" सरदार दंशवाले थे ऐसा भी कहा गया है। यह बात कितनी गलत है इस हेतु एक ही उदाहरण काफी होगा। सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर ने तो ट्रावंकोर के महाराजा को स्वतन्त्र रहने की सलाह दी थी और भोपाल की बाबत कोरफील्ड के साथ मिलकर उन्होंने अनेक छलप्रपंच किये थे। यह सब भुलाकर सरदार ने, जब सर सी० पी० अय्यर को अपनी भूल समझ में आई तब अपने यहाँ उन्हें मेहमान बनाया और अमेरिका के राजदूत पद पर उनकी सिफारिश की। वे अपने छोटे साथियों की योगक्षेम का ध्यान रखते थे। वह भी यहाँ तक कि बारडोली स्वराज्य आश्रम का रसोइया मुसीबत में आ जाय तो उसकी बाबत कदम उठाने का समय भी सरदार को मिल जाता था। साधन-शुद्धि की बाबत गांधीजी का तराजू सुनार के तराजू जैसा था। उनकी समता कौन कर सकता है ?

सरदार और गांधीजी

क्या सच में सरदार गांधी के अन्ध अनुयायी थे ? वे गांधीजी के अनुयायी अवश्य थे, पर 'अंधे' नहीं थे। राजाजी ने एक बार कहा था :

"बापूजी के अन्य 'अन्ध अनुयायी' होंगे पर सरदार तो अन्धे नहीं ही थे। वे हमेशा बापूजी की दृष्टि से देखने का प्रयत्न अवश्य करते थे, पर उनकी अपनी दृष्टि नहीं थी, ऐसा नहीं है, तथापि बापूजी की नजर से देखने के खातिर वे जान-बूझकर अपनी आँख पर पट्टी बाँधते थे।"[1]

सरदार और गांधीजी के सम्बन्ध धार्मिक कहे जा सकते हैं या नहीं, यह प्रश्न है पर नरहरिभाई ने जैसा लिखा है वैसे यह सम्बन्ध 'कुटुम्ब के अन्तरंग आदमी' जैसा तो था ही। यरवदा जेल में ता० ८-५-१९३३ के रोज गांधीजी ने आत्मशुद्धि और समाजशुद्धि के लिये इक्कीस दिन का उपवास किया और उसी दिन उन्हें छोड़ दिया गया तब बाहर निकलने के बाद उन्होंने जो निवेदन किया, उसमें सरदार के विषय में जो उद्‌गार हैं उनसे गांधीजी और सरदार के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। गांधीजी ने कहा था :

"जेल में सरदार वल्लभभाई के साथ रहने का अवसर मिला यह एक बहुत बड़ा लाभ था। उनकी अद्वितीय शूरवीरता और ज्वलंत देश-प्रेम की तो मुझे जानकारी थी, पर इन सोलह महीनों में उनके साथ रहने का जैसा सौभाग्य मुझे मिला उस प्रकार में कभी उनके साथ नहीं रहा था। उन्होंने प्रेम से जिस प्रकार मुझे सराबोर किया उससे तो मुझे अपनी प्यारी माता की याद आ जाती थी। उनमें माता के ऐसे गुण होंगे यह तो मैं जानता ही नहीं था। मुझे तनिक-सा कुछ हो तो वे तुरत बिस्तर से उठ जाते थे। मेरी सुविधा की छोटी-से-छोटी वस्तु के बारे में वे स्वयं ध्यान रखते ··"।[2]

गांधीजी और सरदार के बीच हुआ सारा पत्र-व्यवहार सुरक्षित है

---

१. मणिबहन पटेल, 'बापू के पत्र—२ : सरदार वल्लभभाई को', नवजीवन, अहमदाबाद, १९५२ (नरहरि पारिख की प्रस्तावना में से), पृ० ११।

२. मणिबहन पटेल, वही, पृ० १०।

और प्रकाशित हुआ है, यह बड़े हर्ष की बात है। आज की नयी पीढ़ी इसे कभी पढ़ेगी क्या ? पढ़ेगी तो जरूर लाभान्वित होगी। गांधीजी ने शुरू में सरदार को 'भाईश्री', बाद में 'भाई' और फिर १९४६ में नोआखाली से १४ नवम्बर को जो पत्र लिखा उसमें 'चिरंजीवी वल्लभ-भाई' कहकर सम्बोधित किया है। इस प्रकार उत्तरोत्तर दोनों के बीच स्नेह-ग्रन्थि मजबूत बनती गयी।

सरदार को गांधीजी के नेतृत्व में अपार श्रद्धा थी। अपनी 'स्टाइल' बनाये रखकर उन्होंने गांधीजी के आदेशों पर अमल किया। गांधीजी की आज्ञाओं की उन्होंने कभी भी अवहेलना नहीं की। गांधीजी के अंतिम दिनों में गांधीजी के मन में सरदार के प्रति कितने ही भ्रम पैदा हो गये थे। कितने ही मित्र इसके लिये जिम्मेदार थे। सरदार सत्ता छोड़ने को तैयार हुए पर गांधीजी की आज्ञा टालने को तैयार नहीं हुए। यह आज्ञापालकता तो ३० जनवरी की शाम पूरे पाँच बजकर दस मिनट तक बनी रही। गांधीजी का अवसान न हुआ होता तो उसी सप्ताह गांधी जी ने भाषण में या लेख में सरदार की बाबत बहुत स्पष्टोक्तियाँ की होतीं, पर ऐसा नहीं हुआ। गांधीजी और सरदार के अन्तरंग सम्बन्धों के विषय में यहाँ अधिक न कहकर सेम्युअल बटलर की एक उक्ति टाँककर सन्तोष करता हूँ :

"यू कैन डू वेरी लिटिल विथ फेथ, बट यू कैन डू नथिंग विदाउट इट।"

उपसंहार

छोटे थे तब गाँव के सीवान पर स्थित विशाल बरगद के तने को बाँह में बाँधने का निष्फल प्रयत्न करते थे। ऐसा प्रयत्न करने के बाद समझ में आता था कि हमारे हाथ बहुत छोटे हैं। सरदार के विषय में बहुत कुछ कहने के बाद मुझे इस समय ऐसा ही अनुभव हो रहा है। लगता है, अभी तो बहुत कुछ कहने को रह गया है।

प्रधानमन्त्री आवेंगे और जायँगे, समाजवाद आयेगा तब मानेंगे, गरीबी हटेगी तब हटेगी। देश के किसान, देश के मजदूर और देश के लोग जब भी देश पर विपत्ति आती है तब आज भी सरदार को याद करते हैं। सारी हताशा, अनास्था और आकुलता के बीच देश के जन-सामान्य की आँखें सरदार की खुमारी को ढूँढ़ती रहती हैं।

काल चलता रहता है, आदमी उसे कैलेंडर में बन्द करने को मथता है पर इससे वह घुटने मोड़कर घड़ीभर नीचे बैठकर भला विश्राम करेगा क्या? हजार वर्षों में भी देश को 'सरदार' मिलेंगे या नहीं यह एक सवाल है। उनके शब्द उनके कर्म के पर्याय थे। उनका कर्म भारत-भाग्य विधाता को चढ़ाने हेतु नैवेद्य था। सरदार का सच्चा स्मारक अर्थात् एक और अखण्ड भारत।

प्राचीन रोम में 'त्रिजनसत्ता' (ट्राइअमवाइरेट) राज्य की कल्पना साकार हुई। हमारे यहाँ भी त्रिमूर्ति की और ख्रिस्ती मत में 'ट्रिनिटी' की कल्पना है। इनके अलावा सत्यम्, शिवम् तथा सुन्दरम् के समन्वय की बात भी होती रही है।

स्वराज्य-घटना के सन्दर्भ में इतना तो कहा ही जा सकता है कि गांधी, सरदार और नेहरू की त्रिमूर्ति इतिहास में अनूठा स्थान प्राप्त करेगी। गांधीजी द्वारा स्वराज्य-घटना का 'सत्यम्' प्रगट हुआ, सरदार द्वारा 'शिवम्' की रखवाली हुई और नेहरू 'सुन्दरम्' के प्रतीक बन गये।

सरदार की बाबत बातों का अन्त तो तभी आ सकता है जब भारत के अस्तित्व का अन्त आये।

मुझे शान्तिपूर्वक सुना, इस हेतु अत्यन्त उपकृत हूँ। धन्यवाद। ●

२

सरदार माने सरदार

सरदारश्री के प्रत्यक्ष परिचय में आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ तो भी केवल परोक्ष परिचय के आधार पर उनकी बाबत बोलने का दुस्साहसपूर्ण काम मैंने स्वीकार किया है। सरदारश्री को अत्यन्त निकट से देखनेवाले और जाननेवाले कितने ही महानुभाव इस सभा में हाजिर हैं, यह देखते हुए इस दुःसाहस में विद्यमान जोखिम की मात्रा बढ़ जाती है, इस बाबत मैं पूर्ण रूप से सचेत हूँ। इसी चेतना के कारण मन में थोड़ा संकोच भी अनुभव करता हूँ। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि किसी व्यक्ति से अप्रत्यक्ष परिचय की कितनी खूबियाँ होती हैं। ऐसे परिचय में हमारी तटस्थता अक्षुण्ण रहे इसकी सम्भावना काफी हद तक बढ़ जाती है। भाषण से पूर्व तैयारी हेतु मुझे सरदारश्री के कितने ही ऐसे परिचितों से मिलने का अवसर मिला जो उन्हें 'बापू' कहते हैं। पुनः पूज्य रविशंकर महाराज जैसे अन्य कई लोग उन्हें 'सरदार साहब' कहते हैं। ऐसे लोगों से मिलने का मौका आता है तब प्रत्यक्ष परिचय की कितनी ही मर्यादाएँ भी देखने को मिलती हैं। लगभग भक्त की भूमिका में सरदारश्री की प्रशंसा होती रहे तब मन में अकुलाहट जगती है कि ऐसी प्रशंसा वस्तुलक्षी होगी क्या ?

यहाँ मुझे एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए। सरदारश्री की बाबत जैसे-जैसे अध्ययन करता जाता हूँ, विचार करता चलता हूँ, वैसे-वैसे उनके प्रति मेरा आदरभाव बढ़ता जाता है। मुझे स्वीकार करना होगा कि अब यह आदरभाव अहोभाव में बदलता जा रहा है। प्रत्यक्ष परिचय की मर्यादा का मैंने जो उल्लेख किया उस मर्यादा से अब मैं भी मुक्त

नहीं हूँ, यह बताकर स्पष्ट करना चाहता हूँ कि अपने मन में अंकुरित इस अहोभाव को मैं आप सबके बीच वितरित करना चाहता हूँ। इस भाषण का विषय 'सरदार माने सरदार' रखा है वह भी ऐसे ही अहोभाव में से सहज ही उत्पन्न हो गया है। मेरे इस अहोभाव को वितरित करने का मौका देने के लिये मैं, सरदार वल्लभभाई पटेल मेमोरियल सोसायटी का, उसके अध्यक्ष आदरणीय बाबूभाई जशभाई पटेल का तथा संयोजक श्री नाथुभाई नायक का आभारी हूँ। भारत की एकता के जागरूक प्रहरी सरदार को शासकों की ओर से और साथियों की तरफ से पूरा न्याय नहीं मिला ऐसी मान्यता रखनेवाले दूसरे अनेक लोगों की भाँति मैं भी ऐसा ही मानता हूँ। सरदारश्री की बाबत थोड़े अध्ययन के पश्चात् मेरी यह मान्यता और भी दृढ़ हो गयी है। बस, इतना कहकर मैं अपने विषय पर आ जाता हूँ।

सरदार और दम्भ के बीच फासला सौ कोस का

सामान्यत: ऐसा होता है कि प्रथम श्रेणी के महानुभावों के पास दूसरी श्रेणी के, दूसरी श्रेणी के लोगों के चारों ओर तीसरी श्रेणी के और फिर तीसरी श्रेणी के लोगों के आसपास चौथी और पाँचवीं श्रेणी के लोगों का घेरा बन जाता है। प्रथम श्रेणी के किसी आदमी के चतुर्दिक् उसी श्रेणी के लोगों का वर्तुल बने यह अपेक्षा करना ज्यादती ही होगी। गांधीजी के सन्दर्भ में देखें तो ऐसा कहा जा सकता है कि आज हमारा देश चतुर्थ या पंचम श्रेणी के लोगों के हाथों में पड़ा है। ऐसा होना यद्यपि दुःखद कहा जायगा पर है अनिवार्य ही। पर मुझे तो एक और ही बात कहनी है। गांधीजी की कंठी धारण करनेवाले में भारी मात्रा में जब दम्भ (हिपोक्रेसी) के दर्शन होते हैं तब सामान्य आदमी का मन खट्टा हो जाता है। वह बेचारा तो भारी अपेक्षा किये बैठा होता है। मेरी विनम्र मान्यता रही है कि मार्क्सवादियों में जड़ता की और

गांधीवादियों में दम्भ की मात्रा अधिक होती है। गांधी-परस्त दम्भ के तीन स्तर देखने को मिलते हैं—

१ गांधी के प्रति निष्ठा तो खरी, पर सत्तालोलुपता भारी मात्रा में।

२ गांधी का नाम होठों पर खेलता रहे, पर अर्थलोभ और वैभव-मूलक जीवन-शैली यथावत्।

३. गांधी प्रणीत ब्रह्मचर्य में श्रद्धा व्यक्त होती रहे, साथ ही निजी जीवन में कामवासना पोषित होती रहे।

इन तीनों स्तरों को ध्यान में रखकर एक हद तक दम्भ-मुक्त ऐसे गांधी-भक्तों की सूची बनायी जाय तो सम्भवतः वह बहुत ही छोटी होगी पर इस लघु सूची में भी सरदार का नाम शीर्ष पर रखना पड़ेगा, ऐसा लगता है। जो समग्र रूप से दम्भ मुक्त हो उसकी बाबत गलतफहमी होने की सम्भावना बढ़ जाती है, यह स्वाभाविक है। सरदार की बाबत कितनी ही गलतफहमियों के विषय में मैं विस्तार से चर्चा करने जा रहा हूँ। इन बातों को सुनते समय दम्भ और गलतफहमी की बाबत मेरा दृष्टिकोण आप ध्यान में रखें, यह प्रार्थना करूँगा। मुझे तो लगता है कि कितनी ही बेबुनियाद गलतफहमियों का गहरा विश्लेषण किया जाय तो वह गलतफहमी भी सरदार की विशेषता, महानता और निडरता को अंजलि देने का निमित्त बन जाय ऐसा सम्भव है।

जड़ता-विहीन दृढ़ता, कायरता से कोसों दूर ऐसी नम्रता, रूढ़िवादिता से भिन्न सिद्धान्त-निष्ठा, दिखावटी पवित्रता से अस्पृश्य व्यवहार-दक्षता और आडम्बरहीन कर्तव्यनिष्ठा सरदार के जीवन में अनेक स्थलों पर देखने को मिलती है। वीर नर्मद ने लूथर का विधान अंकित करके 'अपने छप्पर पर जितने नलिये हों उतने दुश्मन' की परवाह न करने की बात की थी। एक चोट और दो टुकड़े करने में विश्वास रखनेवाले, स्पष्ट वक्ता और सरदार जैसे निडर नेता के शत्रु न हों यह

अनोखी बात होगी। सरदार स्वयं इतने प्रतिभावान् थे कि उन्हें विरोधी भी तुलना में सबल कहे जा सकें ऐसे ही मिले थे। देश की अत्यन्त विकट परिस्थिति में सरदार ने जो अडिगता प्रदर्शित की उसकी प्रशंसा विरोधियों को भी करनी पड़ी। सरदार ने कभी कदाच् ही सामनेवाले आदमी की दुर्बलता का लाभ उठाया हो सकता है, पर सरदार की निर्बलता का लाभ दूसरों ने उठाया हो ऐसा ज्ञात नहीं हो सका है! कितनी ही गलतफहमियों को बाबत तो ऐसा भी कहा जा सकता है, ऐसी गलतफहमी फैलानेवालों ने अपनी ही दुर्बलता को उनपर ओढ़ाने का प्रयत्न किया है। शेरिटन ने अपनी पुस्तक 'स्कूल फार स्कैंडल्स' में प्रदर्शनप्रिय नायिका के मुँह से निम्नलिखित शब्द कहलवाये हैं—"वुंडेड माइसेल्फ इन द अर्ली पार्ट आफ माई लाइफ, आई हैव सिंस नोन नो प्लेज़र ईक्वल टु रिड्यूसिग अदर्स टु द लेवल आफ माई ओन रेप्यु-टेशन" (जीवन के आरम्भ में मुझे जो आघात लगे उन्हें ध्यान में रख-कर तब से जब भी मौका मिला है, दूसरों को अपने स्तर तक उतारने जैसा कोई आनन्द मुझे नहीं मिला है।) कुछेक अंशों में सरदार के विरोधियों पर भी यह बात लागू होती है।

१. क्या सरदार कठोर थे ?

यह सच है कि सरदार जल्दी से रीझ जाएं ऐसे आशुतोष नहीं थे, गलतफहमियों, निन्दा और वासना के जहर को पी जानेवाले नीलकंठ थे। सत्ता के शिखर पर बैठे राजनीतिज्ञ जल्दी ही रीझ जाते हैं और बहुधा प्रियजनों में लाभों का भण्डारा करते रहते हैं। सरदार ऐसे राज-नीतिज्ञ (पोलीटीशियन) नहीं थे बल्कि एक राजनेता (स्टेट्समैन) थे। राजनीतिज्ञ आनेवाले चुनाव पर ध्यान केन्द्रित रखता है जब कि राजनेता आनेवाली पीढ़ी पर नजर रखता है। राजनेता कभी लड़ाई (बैटल) हार भी जाता है पर वह युद्ध (वार) जीतने के लिये। सरदार को अल्पकालिक लाभ आकर्षित नहीं कर पाते थे। उनकी दृष्टि रामायण

के गृध्रराज जटायु के भाई संपाति की भाँति बहुत दूर तक देख पाती थी। फलतः तत्काल लाभ प्रदान करनेवाले वाममार्गी उपायों पर उन्हें अधिक श्रद्धा नहीं होती थी। उनके उपचार अक्सर कठोर प्रतीत होते थे पर दीर्घकाल में वे फलदायक और स्थायी सिद्ध होते थे।

सरदार के निजी जीवन में किसी साधु को शोभा दे ऐसा दृढ़ वैराग्य देखने को मिलता है। जीवन में निपट एकाकीपन हो, साथ में कीर्तिभरी सफलता हो और सत्ता के कारण प्राप्त होनेवाली अन्य सुविधाएँ हों तब कामवासना को संयमित रखना लगभग असम्भव बन जाता है। केवल राजनीति ही नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी सफलता के शिखर पर बैठे महानुभावों के निजी जीवन में झाँकें तो यह बात समझ में आ जाती है। ये तीनों चीजें इकट्ठा हुईं, फिर भी सरदार की बाबत अफवाह जैसी भी कोई बात सुनने को नहीं मिली है। महान् शासकों की कंचन-कामिनी और सुरापान संबंधी कमजोरियाँ इतिहास की करवट बदलनेवाली सिद्ध हुई हैं। सरदार का निजी जीवन इतना पाक-साफ था कि छिद्रान्वेषी अंगुली रखने का भी स्थान नहीं मिलेगा। उन्होंने जीवनभर के निपट एकाकीपन को पचा डाला और पीड़ाकारक व्याधि की परवाह नहीं की। उच्च स्थानों पर बैठे साथियों की ओर से होते आक्षेप और असाधुजनों द्वारा फैलायी गलतफहमियाँ वे पी गये, पर धैर्य नहीं छोड़ा। सन् १९४८ की जनवरी का दूसरा पखवारा सरदार के धैर्य को कसौटी पर कसनेवाला कठोर समय था। उसमें भी ३० जनवरी को गाँधीजी की हत्या हो गयी। जयप्रकाश जैसे नेहरूजी के प्रगाढ़ साथी की ओर से गाँधीजी की हत्या की बाबत गृह-विभाग सँभालते सरदार पर दोषारोपण हुआ। सरदार नीलकण्ठ की भाँति जहर पीते रहे। सरदार ने कहीं स्वयं अपने ऊपर ओढ़ा कठोर अनुशासन थोड़ा ढीला छोड़ा होता या फिर संयम की सीमा तोड़ी होती तो देश की उस समय की नाजुक परिस्थिति अत्यन्त क्षुब्ध बन गयी होती।

सरदार ने अपनी प्रतिष्ठा पर होते आघात सहते रहकर परिस्थिति को सँभाल लिया। सरदार के ऐसे सूक्ष्मतम बलिदान की नोंध इतिहास को लेनी पड़ेगी। यहाँ सरदार की तथाकथित कठोरता के कवच में सुरक्षित कोमलता के हमें दर्शन होते हैं। सामान्यतः आदमी के अन्तः-स्थल में पड़ा गहरा दर्द जब आँसू बनकर बहने लगता है तभी दूसरों को उसकी खबर होती है। सरदार की तो धातु ही अनूठी थी जिसके फलस्वरूप अन्दर ही अन्दर घुट-घुटकर गाढ़े होकर जम गये दर्द की भनक भी दूसरों को जल्दी नहीं मिलती थो। उन्हें अत्यन्त निकट से जानने-वालों को सरदार की कोमलता का आभास मिलता था। यही नहीं, बल्कि प्रतीति भी होती थी, क्योंकि वह कवच वहाँ बिखर जाता था। नारायण देसाई ने यह बात निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की है :

"बापू के जाने के बाद के ही कुछेक महीने थे, उन महीनों में जिन लोगों ने सरदार को बापू के लिए मुरझाते देखा है, वे सोचते हैं कि ऐसे सरदार को लौहपुरुष कहना कहाँ तक ठीक है? उन्हें यदि नारियल जैसा, कि बाहर से छिलका सख्त लगे पर अन्दर से एकदम मृदु हो, या 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' कहा जाय तो समझ में आ सकता है।"

सम्भावित नासमझी के डर से स्वयं को जो सच्चा लगे वह कहने में और करने में होनेवाली आनाकानी, कायरता का एक प्रच्छन्न प्रकार है। गलतफहमी से डर-डरकर चलनेवाला आदमी कुछ भी नहीं कर सकता, कारण यह कि उसका जीवन तो गलतफहमी न हो इसके प्रति सावधानी बरतने में और अपने को उचित प्रतीत होते कामों को टालने में ही बीत जाता है। सरदार ने ऐसी कायरता कभी भी प्रदर्शित नहीं की, इससे भी कठोरता की छाप पक्की हुई हो, यह भी सम्भव है। पुनः कभी-कभी कठोरता भी कन्सील्ड वार्यारिंग की तरह अव्यक्त रह जाती है। ऐसी अन्दरूनी कठोरता तत्काल लोगों के ध्यान में नहीं

आती, वह तो मीठी बोली के रुपहले रैपर में ढँकी होती है। सरदार के पास ऐसी मीठी वाणी नहीं थी। उनकी वाणी चरोतर के पटेल को शोभा दे ऐसी ऊबड़खाबड़ और स्पष्ट थी। ऐसी वाणी द्वारा उनके हृदय में जो था वह होठों पर आता था। यह उनकी जीवन-शैली का एक अंग था। उन्होंने किसीको भी ऐसा वचन नहीं दिया जिसका उन्होंने पालन न किया हो। किसी पाले न जा सकने योग्य वायदे के लिए उन्होंने 'मैं देखूँगा' जैसी बात नहीं कही। शोरबे में काली मिर्च भुरकने वाले और होते हैं, सरदार नहीं।

आखिर 'कठोरता' माने क्या? यह मन की एक अवस्था है। एक उदाहरण देकर मैं बात स्पष्ट करूँगा। आर० टी० ओ० का एक अफसर ड्राइविंग लाइसेंस देने में थोड़ी सख्ती दिखाता है। यह लाइसेंस देने में वह किसीके दबाव में नहीं आता। एक दिन उसके नाम नगर के एक प्रतिष्ठित कार्यकर्ता की चिट्ठी आती है जिसमें एक विधवा के इकलौते बेटे को ट्रक चलाने का लायसेंस मिले, इस बाबत थोड़ी मुलायमियत रखने की सिफारिश होती है। अफसर स्वयं चिट्ठी लिखनेवाले कार्यकर्ता से मिलने जाता है और एक दलील पेश करता है। वह कहता है : "यह ट्रक चलानेवाला इकलौता बेटा रास्ते में वाहन चलाने में भूल करे और किसी युवक को रौंद डाले तो उसकी इकलौती माँ का क्या होगा?" जरा गहरे उतरकर विचार करने की बात है। क्या हमारी तथाकथित करुणा भी हमारी कर्तव्यपरायणता और हमारे स्वधर्म का मखौल करने वाली नहीं बन जाती? अपना धर्म निष्ठापूर्वक पालन करनेवाले आर० टी० ओ० अफसर अन्ततोगत्वा, रास्ते पर चलनेवाले हजारों-लाखों लोगों के लिये करुणावान् सिद्ध होगा। इस तर्क का विस्तार करने का लोभ मैं त्यागकर मात्र इतना ही कहना चाहता हूँ कि आज के अधिकतर सेवकों का अधिकतम समय ऐसी अनगढ़, अन्यायी और औचित्यविहीन सिफारिशी चिट्ठी लिखने में तथा हमारे ऐसे सहन-

शील अधिकतर अफसरों का समय ऐसी सिफारशी चिट्ठियों के कारण बरबाद होता है। सरदार की तथाकथित कठोरता का हमें ऐसे व्यापक सन्दर्भ में मूल्यांकन करना पड़ेगा। एक गुंडे को सजा देते समय हमारे दया प्रदर्शित करने का अर्थ सिर्फ इतना है कि सज्जनों को गुंडों की दया पर छोड़ देने के हित कठोर बनना। ऐसी दया सरदार कभी न दिखाते क्योंकि उनकी करुणा इतनी छोटी दृष्टिवाली नहीं थी।

शेख अब्दुल्ला के लिये सरदार के मन में कोमल भावना नहीं थी परन्तु अन्त में उनके लिये कोमल भावना धारण करनेवाले नेहरू को ही उन्हें जेल में बन्द करना पड़ा। सरदार ने राजाओं के राज्य ले लिये पर इन राजाओं का सबसे अधिक विश्वास सरदार पर ही था। भावनगर के महाराज को वे पितातुल्य प्रतीत हुए। हाँ, वे आवश्यकता होने पर काटछाँट करते थे पर उसके पीछे देश का हित उनके हृदय में रहता था। नश्तर लगानेवाला डॉक्टर रोगी के प्रति कठोर है ऐसा हम कह सकते हैं क्या? रोते हुए बालक को चाकलेट न देनेवाली माँ को हम कठोर कहेंगे क्या? विद्यार्थियों की अन्याय पूर्ण माँगों के अधीन न होनेवाले कुलपति को हम कठोर कहेंगे क्या? बेकाबू भीड़ पर लाचारी की हालत में गोली चलानेवाले पुलिस कमिश्नर को हम 'कठोर' कहेंगे क्या? परीक्षा की कापियाँ जाँचने में किसी तरह की दया माया न करनेवाले परीक्षक को हम 'कठोर' कहेंगे क्या? ऐसी कठोरता न बरती जाय तो समाज में सज्जन भला शान्ति से सो सकेंगे क्या? ऐसी कठोरता के अभाव में भारत के कितने ही राज्यों में गुंडाराज हो गया है ऐसा 'वहम' होता है। धर्म के पालनार्थं अर्जुन को युद्ध करने की प्रेरणा देनेवाले कृष्ण को हम 'कठोर' कहेंगे क्या? सरदार की तथाकथित कठोरता को ऐसे विशाल परिप्रेक्ष्य में न देखें तो उनके प्रति भारी अन्याय कर बैठेंगे।

यदि सरदार सचमुच 'कठोर' होते तो सेवादल के प्रधान (जी०

ओ० सी०) मणिलाल जयमल शेठ बीमार हैं ऐसी खबर मिलते ही बहुत सबेरे उनके यहाँ जाकर आवश्यक आर्थिक व्यवस्था तत्काल जुटाने के लिए क्या वे समय निकाल पाते ? सरदार के निकटवर्ती साथियों से उनकी कोमलता के ऐसे तो सैकड़ो उदाहरण मिल जाते हैं। उनकी शैली का एक लक्षण यह था कि सच्चे आदमी को उनसे डरना न पड़े और कच्चे आदमी को डरना ही पड़े। पूज्य रविशंकर महाराज सरदार की बात शुरू करते तब इस बात की सतत प्रतीति होती रहती थी।

२. क्या सरदार हिन्दु-परस्त थे ?

यह एक ऐसा मुद्दा है जिसकी बाबत सरदार का बचाव करने में भी मुझे संकोच का अनुभव होता है। हमारे चुनाव परस्त नेताओं ने साम्प्रदायिकताविहीनता की नीति को जिस करवट बिठाया है उसके फलस्वरूप आज देश में हिन्दू-मुस्लिम कौमवाद फिर से अपना भयावह रूप प्रगट कर रहा है। मुद्दे की स्थापना मैं एक सच्ची घटना का उल्लेख करके करना चाहता हूँ। सन् १९८१ के जून में शिक्षा सम्बन्धी एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में भाग लेने मैं वानकूवर (कैनेडा) गया था। वहाँ इस्लामाबाद की अल्लामा इकबाल युनिवर्सिटी के कुलपति और मेरे मित्र डॉ० अहमद मोह्युद्दीन से मुलाकात हुई। बातचीत के दरमियान उन्होंने भारत में हो रहे कौमी फिसादों का उल्लेख करते हुए कहा, 'आपके यहाँ मुस्लिम राष्ट्रपति भले हों, पर सामान्य मुस्लिम सुखी नहीं है। यह ऊँचे ओहदे पर बैठनेवाले मुस्लिम ऊपरी मुलम्मा मात्र हैं।' मैंने पूरी नम्रता से उन्हें सूचित किया कि 'भारत में हो रहे कौमी झगड़ों के लिए हम शर्मिन्दा हैं यह सच है, पर इसके साथ ही मैं आपसे एक अर्ज करूँगा कि पाकिस्तान में ऊपरी मुलम्मे के रूप में ही सही कोई हिन्दू राष्ट्रपति बन सकता है क्या, इसकी सम्भावना पर विचार कर देखियेगा।'

इस मुद्दे की बाबत सरदार की भूमिका पर आऊँ उससे पहले

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध पत्रकार और मुस्लिम समाज के राजाराम मोहन राय कहे जा सकें ऐसे सुधारक मरहूम हमीद दलवाई द्वारा इसी शहर में दिये गये एक भाषण का एक अंश यहाँ प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—

"मुस्लिम राष्ट्र (पाकिस्तान) अस्तित्व में आया, तो भी मुस्लिम समाज की बुनियादी प्रेरणाएँ बदली नहीं है। भारतीय मुस्लिम समाज में पहले के ज़माने की साम्प्रदायिक ताकतें फिर सिर उठाती दिख रही हैं और भारत की हिन्दू मुस्लिम समस्या हल करने के लिये मानों विभाजन हुआ ही नहीं और मानो इस प्रश्न का राजनीतिक हल करना अभी बाकी है, ऐसे रोब से विभाजन से पहले की सभी माँगें फिर से नये स्वरूप में सभी मुस्लिम संगठन करने लगे हैं····सनातनी मुसलमानों ने तो भारत का वर्तमान अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया है। इस देश को इस्लाममय करने का ध्येय नजर के सामने रखनेवाले सनातनियों की हरकतों का स्वरूप इसी प्रकार का है। ऐसी परिस्थिति में सुशिक्षित मुसलमान और सनातनी मुसलमान इन दोनों की एकदिली हमें दिखे तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है····भारत में मुस्लिम लीग विभाजन के बाद भी बनी रही। पहले से ही मुस्लिम लीग ने पुरानी नीति का का अनुसरण ही चालू रखा है। मुसलमानों के लिये अलग मतदाता क्षेत्र होने चाहिये, नौकरियों में उन्हें उनकी आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व चाहिये, मुसलमानों की बाबत लोकसभा को कोई भी कानून नहीं बनाना चाहिये—ऐसी भूमिका मुस्लिम लीग की है, ऐसा कह सकते हैं। केरल में लीग का अड्डा जमा है, क्योंकि वहाँ की विशिष्ट राजनीतिक परिस्थिति का इस पक्ष को लाभ मिला है—राष्ट्रीय दलों की ऐसी नीति के कारण मुस्लिम लीग वहाँ प्रबल बनी है। और अब, मुस्लिम बहुमत वाला अलग जिला प्राप्त करने में लीग को सफलता

मिलने की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं—थोड़े ही वर्षों में मुसलमानों के लिये अलग सार्वभौम राज्य की माँग हो तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।"[1]

गांधीजी की मरजी के खिलाफ इसके टुकड़े हुए तब जनाब जिना को देश की बागडोर सौंपने की इच्छा भी गांधीजी ने व्यक्त की, पर जिना की अकड़बाजी के आगे किसकी चली। हिन्दू-मुस्लिम दंगों में कांग्रेसी नेताओं ने हिन्दुओं को छोड़ दिया, पर जिना ने तो आग में किरोसीन डालने का काम चालू रखा, ऐसी परिस्थिति में विभाजन के बाद के भारत में हिन्दुओं में एक प्रतिक्रिया पैदा हुई, जिसने गांधीजी का भोग लिया। ऐसे समय भारत में रहनेवाले मुस्लिम नेताओं और पंडित नेहरू जैसे उदार हृदय नेताओं में, हिन्दुओं की सच्ची बात का पक्ष लेने की हिम्मत करनेवाले को 'सम्प्रदायवादी' बताने का चलन दिखता है। ऐसे चलन ने अन्त में तो असम्प्रदायिकता को कुसेवा ही की है, ऐसा आज कहा जा सकता है।

गांधीजी के पास सरदार की बाबत अनेक फरियादें पहुँची थीं। ३० जनवरी को गांधीजी की हत्या हुई उससे पहले सरदार ने अपने उद्‌गार व्यक्त करके बहुत सी बातों का स्पष्टीकरण करके, दोनों व्यक्ति नेहरू के साथ पुनः मिलने का तय करके अलग हुए थे कि तभी कुछ ही मिनटों बाद गांधी जी की हत्या हो गयी। मैं तो मानता हूँ कि गांधी केवल २४ घण्टे और जीवित रहे होते तो सरदार की बाबत अपना सन्तोष उन्होने किसी न किसी रूप में अवश्य व्यक्त किया होता। पर ऐसा नहीं हुआ। सरदार के बाद के वर्षों में मुस्लिमों को असम्प्रदायिकता के बारे में सच्ची और कड़वी बातें कहने वाला एक भी नेता भारत को

१. हमीद दलवाई—"मुस्लिम कौमवाद अने भारत पाक सम्बन्धो", हेरल्ड लास्की इंस्टीट्यूट ऑफ पोलिटिकल सायंस, अहमदाबाद, १९६९, पृ० १-१२।

नहीं मिला। अभी 'नेशनल सिविल कोड' की बाबत हम कुछ भी नहीं कर सके हैं। अभी बनारस हिंदू युनिवर्सिटी और अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के नाम हम नहीं बदल सके हैं। सूरत के भूतपूर्व मेयर श्री ने मुझसे एक बार कहा था कि हम रास्ते पर से मन्दिर हटाने के लिये हिन्दू ट्रस्टियों को समझा सकते हैं पर बीचों-बीच खड़ी दरगाह को हटाने के लिये मुस्लिम भाइयों को नहीं समझा सकते। हमारी असम्प्रदायिक्ता अभी डरपोक अवस्था से बाहर नहीं निकली है। सरदार किसी को खुश रखने के लिये बुनियादी नीति में फेर बदल करनेवाले ढीले नेता नहीं थे। किसी सिरफिरे हिन्दू के साथ उन्होने नरम आचरण किया ऐसा कहीं लिखा नहीं गया है। वही सरदार यदि किसी मुस्लिम गुंडे की सजा करें तो हिन्दुओ के पक्षपाती बन गये यह कैसा तर्क है ? भोगी भाई गान्धी ने अपने एक अध्ययन पूर्ण लेख में लिखा है—'मुस्लिमों' को यह बात समझनी चाहिए कि भारत में 'कट्टर हिन्दूवाद' आज तक कभी पैदा नहीं हुआ है। हिन्दू सभा जैसी कौमी संस्था (स्थापना १९१५) की भारी माथामारी के बावजूद हिन्दू कौम पर उनका राजनीतिक या सामाजिक एक भी प्रकार का प्रभुत्व स्थापित नहीं हुआ है।"[1]

सरदार की भूमिका पर आवें तो एकदम १९३१ के वर्ष तक पहुँचना पड़ेगा। सूरत में कुछ समय पूर्व साम्प्रदायिक दंगे हुए। इनके परिणाम स्वरूप बहिष्कार की हवा चल पड़ी। इस बाबत झीणाभाई देसाई (स्नेह रश्मि) ने अपनी अप्रकाशित आत्मकथा 'साफल्य टाणु' में जो बातें लिखी हैं वे सरदार के चरित्र को स्पष्ट करने वाली हैं। १९३१ में सूरत शहर कांग्रेस कमेटी के संचालन का भार युवकों ने अपने कन्धे पर ले लिया

---

१. भोगीलाल गांधी, भारत की कौमी समस्या, लोक स्वराज्य, वर्ष ३, अंक १०, ३१-१-८३, अहमदाबाद, पृ० १-८, यह लेख वारंबार पढ़ने की मैं सिफारिश करता हूँ।

था। इस समिति के प्रमुख श्री झीणा भाई थे। हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए और पारस्परिक बहिष्कार हल्का हो इस हेतु युवकों ने खादी प्रदर्शन आयोजित किये और हर रोज शाम को सूरत के रज्ज़ाक बैंड को आमन्त्रित करने का निर्णय किया। यह प्रस्ताव लेकर झीणा भाई सरदार के पास गये। सरदार ने पूरी जाँच पड़ताल करके अपनी सहमति प्रदान की। झीणा भाई यह प्रस्ताव लेकर रज्ज़ाक के यहाँ गये। रज्ज़ाक की आँखें डबडबा आयीं। उन्होंने प्रस्ताव का स्वागत किया। रज्ज़ाक ने जितने दिन प्रदर्शन चलेगा, उतने दिन बैंड का कार्यक्रम देना स्वीकार किया, इतना ही नहीं, उनका समूचा बैंड खादी के वस्त्रों में सुसज्जित होकर आयेगा, यह भी सूचित किया। सरदार ने इस आयोजन में पूरा योगदान दिया और उद्‌घाटन के समय वे विशेष रूप से उपस्थित थे।[1] थोड़े दिन पूर्व दिल्ली के गुजरात भवन में मद्रास के भूतपूर्व राज्यपाल और सरदार को निकट से जानने वाले श्री के० के० शाह मिल गये। उन्होंने बताया कि बम्बई में तो मेहर अली और आबिद अली जैसे मुस्लिम समाजवादी सरदार के चाहने वालों में थे। उन्होंने तो ऐसा भी बताया कि नेहरू के मुस्लिम साथियों ने भी सरदार की बाबत यह गलतफ़हमी फैलाने में अहम भूमिका अदा की।

इस सन्दर्भ में मुझे अपने गाँव की बात याद आती है। रांदेर की सीमा में किसानों के खलिहान के पास एक दरगाह स्थित थी। खलिहान में से होकर दरगाह में जाना पड़ता था और खलिहान में अनाज़ पड़ा हो तब चोरी न हो इस डर से हिन्दु-मुस्लिम नेताओं की एक संयुक्त बैठक हुई। सन् १९४१ के दौरान यह बात हुई। सब लोग एक बात पर सह-मत हुए कि २५ फुट चौड़ा रास्ता बगल से निकाला जाए जिससे शान्ति बनी रहे। इस समाधान के अनुरूप किसानों ने २५ फुट रास्ता छोड़कर

---

१. भाषण के समय जब मैंने यह बात कही श्री स्नेहरश्मि उपस्थित थे। लेखक।

बाड़ बना ली। पर फिर एक कठिनाई उठ खड़ी हुई। मुस्लिम युवकों ने अपने बुजुर्गों द्वारा स्वीकृत समाधान ठुकरा दिया। बात फिर चंग पर चढ़ी और किसान कानजी भाई के यहाँ गये। सरदार वहाँ टहल रहे थे और मोरारजी भाई (उस समय के बम्बई राज्य के महसूल अधिकारी) भी थे। सरदार ने किसानों को बहुत डपटा और कहा : 'सरकारी जमीन पर बाड़ बनाने का आपको क्या हक है ?' किसान वापस लौट गये पर थोड़े ही समय में सरदार ने बाड़ बनवा दी और रास्ता बना रहा। गाँव के मुसलमान इस बाबत मौलाना आजाद तथा गांधीजी से भी मिले, पर सरदार अडिग रहे। आज भी यह व्यवस्था चालू है और खलिहान में अनाज न हो तब लोग खलिहान की जमीन डाँक कर भी दरगाह में जाते हैं। उस समय बम्बई राज्य के सार्वजनिक निर्माण विभाग के मन्त्री जनाब महम्मद यासीन नूरी थे और वे स्वयं आ कर मौका मुआइना कर गये थे। मोरारजी भाई ने भी इस प्रश्न के व्यावहारिक समाधान में रुचि ली। सरदार द्वारा की गयी व्यवस्था के अनुसार आज भी ईद के दिन खलिहान के सामने पुलिस का पहरा रहता है। सरदार ने बाड़ लगवा दी, इससे स्थायी फैसला हो गया ! यही सरदार की खूबी थी। कितनी ही बार न्याय के अमल में की जाने वाली कड़ाई अनेक विडम्बनाओं को टालने वाली बन जाती है। 'मुसलमान नाखुश होंगे' इस भय से नेताओं द्वारा की गयी ढिलाई ने कट्टर हिन्दूवादियों को नाहक उत्तेजित किया। सरदार ऐसी ढिलाई किसी के भी प्रति नहीं दिखाते थे--हिन्दुओं के साथ भी नहीं और मुसलमानों के साथ भी नहीं। यही सच्ची सम्प्रदाय निरपेक्षता है। ऐसी दृढ़ता सत्ताधारी दिखाये तो ही कौमी समस्याएँ सुलझ सकती हैं--नहीं तो वे उलझती ही रहती हैं। इस मुद्दे पर इससे अधिक लिखना मुझे ठीक नहीं लगता। काका साहब कालेलकर जैसे जीवन-संस्कृति के परम उपासक और समन्वयवादी चिन्तक ने अहमदाबाद में एक भाषण दिया था।

उन्होंने कहा था : "लोगों को अलग थलग रखेंगे और जिनके वास्ते यह स्थिति अनुकूल न हो उन्हें विशेष अधिकार देंगे—अंग्रेजों द्वारा सुझाया गया यह इलाज, हमने स्वीकार किया है, और इसी के कारण यह राष्ट्रीय दुर्बलता हमने स्थायी बनायी है। 'बिगड़ के रहने से ज्यादा मिलता है' ऐसा अनुभव होने के बाद फलां फलां कौमों को अलगाव में ही लाभ दिखता है। विशेषाधिकार हमारी राष्ट्रीयता की खामियों को मजबूत बनाता है और कौमवाद को—पहले कभी न था—इतना संगठित करता है। सत्ताधारी नेता इस स्थिति के अभ्यस्त हो गये हैं और इस कारण उन्हें दूसरा इलाज सूझता ही नहीं। यदि सूझे भी तो वे उसे जनता के समक्ष रखने की हिम्मत नहीं करते।"[1]

मैं केवल इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि सरदार के पास कौमवाद का इलाज करने की हिम्मत थी। ऐसी हिम्मत दिखाने वाले को (किसी एक कौम के प्रति) पक्षपात करने वाला माना जाय तब ऐसा कहने वाला, अपना अज्ञान और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की बाबत सचेतनता का अभाव जैसी दो कमियों को जाहिर करता है। मुसलमानों में अपने बारे में गलतफहमी फैलेगी ऐसे ख्याल से डर कर उचित कदम न उठायें, ऐसी कच्ची मिट्टी के सरदार नहीं थे। वास्तविक सम्प्रदाय-निरपेक्षता किसी भी न्यायिक कदम की बाबत बहुमत-अल्पमत की ऊहापोह होगी इस भय से मुक्त रहकर शासन चलाने में है। सरदार ने इसी नीति का अमल किया था—और यदि कौमवाद के राक्षस का दमन करना हो तो हमें भी यही नीति अपनानी होगी। ऐसा होगा तभी दोनों कौम के कट्टरपंथी ढीले पड़ेंगे।

---

१. काकासाहब कालेलकर, 'प्रजाकीय सत्ता नो उदय', हेरल्ड लास्की इंस्टीट्यूट ऑफ पोलिटिकल सायन्स, अहमदाबाद, १९६९, पृ० २०।

३. क्या सरदार गन्दे राजनीतिज्ञ थे ?

इससे पूर्व राजनेता (स्टेट्समैन) और राजनीतिज्ञ (पोलिटीशियन) के बीच बुनियादी अन्तर की बात मैंने कही थी और सरदार का राजनेता के रूप में परिचय दिया था। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए मैं कहना चाहता हूँ कि सरदार चाणक्य के समकक्ष विलक्षण अभिकर्ता और देश की परिस्थिति के जानकार थे।

आज के राजनीतिज्ञों ने अभिकर्ता कर्म को अनकरीब 'मैली विद्या' के दर्जे तक नीचे उतार दिया है। नतीजा यह है कि राजनीति में तो गन्दी चालें होती ही हैं, ऐसी छवि बन गयी है। सरदार प्रतिभासम्पन्न राजनेता थे और उनकी वेधक दृष्टि परिस्थिति का जायजा त्वरित गति से ले लेती थी। महत्वपूर्ण और दूरगामी परिणाम हों ऐसे राजकीय निर्णय-लेने की पेचीदा सूझ सरदार के पास थी। ऐसी पेचीदा सूझ का उपयोग उन्होंने सौदेबाजी करने में, निम्न स्तर की राजनीतिक चालें चलने में या अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं के पोषण के लिये कभी भी नहीं किया। गांधीजी भी अभिकर्ता तो थे ही, पर उनका अभिकर्तापन सत्य और अहिंसा की लक्ष्मण रेखा को डाककर आगे नहीं बढ़ता था। सरदार की मूल्यनिष्ठा गांधीजी जितनी सूक्ष्म तो नहीं ही थी, यह सच है, पर सरदार ने भी बुनियादी बातों में अधिक फेरबदल नहीं की। कभी उन्होंने कुछ छूट ली भी होगी तो देश के हित के लिये, अपने लिये तो कभी भी नहीं। ऐसी छूट लेते समय भी उन्होंने गांधीजी की मर्यादा का पालन तो किया ही। इस मुद्दे पर सिलसिलेवार विचार कर लें जिससे कहीं अन्याय न हो जाय। बहुचर्चित वीर नरिमान प्रकरण को ही लें।

नरिमान ने सर कावसजी जहाँगीर को एक गोपनीय पत्र लिखकर सूचित किया कि यदि आप चुनाव में खड़े हों तो हम आपके विरुद्ध किसी को खड़ा नहीं करेंगे। मीठु बहन पीटिटे ने यह पत्र सरदार को

दे दिया। नरिमान सर कावसजी के विरुद्ध खड़े न हुए। कांग्रेस के साथ उन्होंने दगा किया। वरली पर ए० आई० सी० सी० की बैठक थी और नरिमान 'भूतिया महल' में रहते थे। इसी दौरान सरदार पण्डित नेहरू को लेकर नरिमान के घर पहुँचे। वहाँ नरिमान के साथ जो लोग बैठे थे उन्हें देखकर नेहरू को नरिमान की असलियत्त का पता चल गया। नरिमान के स्थान पर बाला साहेब खेर को मुख्य मन्त्री बनाने की बात आयी तब एस० के० पाटिल जैसे सरदार भक्त ने भो सरदार के समक्ष नरिमान की वकालत की, पर सरदार के पास नरिमान के विरुद्ध काफी मसाला इकट्ठा हो गया था।

बाला साहेब खेर अत्यन्त प्रामाणिक सालिसिटर थे और उनका अभिजात्य नम्रता और सुजनता से शोभित हो उठे ऐसा था पर वे करीब-करीब अनभिज्ञ थे। सरदार ने उन्हें 'महासागर का मोती' कह कर अनुकम्पा की। समूचे बम्बई को आघात लगा। अखबारों ने सरदार की कड़ी आलोचना की। अन्त में नरिमान के साथ हुए तथाकथित अन्याय की जाँच के लिये कमीशन बना, जिसमें महात्मागान्धी और बहादुर जो (पारसीसज्जन) थे। कमीशन ने नरिमान के विरुद्ध फैसला दिया और सरदार ऐसी कड़ी जाँच-पड़ताल के अन्त में बिलकुल निर्दोष सिद्ध होकर बाहर आये।[1]

यह सच है कि सरदार किसी को धोखा नहीं देते थे और साथ ही कोई उन्हें धोखा दे जाय यह भी उन्हें स्वीकार्य नहीं था। ऐसी तो कितनी ही घटनाएँ बतायी जा सकती हैं जब सरदार ने अपनी राज-

---

१. नरिमान बम्बई में कितने लोकप्रिय थे इसका अनुमान 'बांबे सेंटिनल' के सम्पादक होर्निमेन के इस वाक्य से लग सकता है—'सरदार इज अनफिट टु अनटाई द लेस आफ वीर नरिमान्स शूज' (सरदार तो वीर नरिमान के जूते के फीते खोलने योग्य भी नहीं हैं।)

नीति को अलग रख कर विरल कहा जा सके ऐसा त्याग किया। लाहौर कांग्रेस का अध्यक्षपद उन्होने छोड़ दिया था, ऐसा कह सकते हैं, इसी प्रकार वे चाहते तो स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्री हो सके होते। इन दोनों अवसरों पर संस्था का झुकाव उनके पक्ष में होने के बावजूद उन्होंने महान् अवसर त्याग दिये। ऐसे अनेक उदाहरण देकर ऐसा प्रतिपादन किया जा सकता है कि सरदार अभिकर्ता तो थे पर भिन्न मिट्टी के। 'ही वाज़ ए डिप्लोमैट विथ ए डिफरेंस'। अभिकर्ता शब्द के साथ जो गलत अर्थ--छायाएँ जुड़ गयी हैं उन्हें एक क्षण को भूल सकें तो यह बात समझ में आ सकती है।

इस विचक्षण अभिकर्ता ने हमेशा अपने हित से ऊपर देश हित को रखा। उन्होंने भी चुनाव का चन्दा उतारा पर कोई सौदेबाजी नहीं की। यह सही है कि कांग्रेस के प्रति सहानुभूति रखनेवाले या समर्थन देनेवाले की बात वाजिब हो तो उसका काम सरदार कर देते थे। वे चाहते तो महाराजा उनके इशारे पर कांग्रेस का ही नहीं, अपना निजी खजाना भी खाली कर देने को तैयार हो जाते। सरदार की साधन शुद्धि की बाबत शंका उठाने वाले से तो इतना ही कहना है कि इकलौते बेटे की सामान्य पथभ्रष्टता को क्षमा न करने वाले, अन्त समय तक उसके घर न जाने वाले और अपने निजी मकान के बदले बिरला निवास में देह त्याग करने वाले कोई अडिग पिता यदि कहीं हो तो बताने का कष्ट करें। सरदार की एकाध दुर्बलता भी महाराजाओं के ध्यान में आयी होती तो उन्होंने सरदार की वह दुर्बलता बड़े सन्तोष के साथ खरीद ली होती। पर सरदार तो अन्दर से दृढ़ वैराग्य वाले थे। इस बात पर जिसे सन्देह हो वह यहाँ के स्मारक भवन में संचित उनका अल्युमिनियम का लोटा देख ले। सरदार की अपेक्षा तो आज के साधू बाबाओं के पास ज्यादा अच्छी घड़ी, अच्छा माल असबाब और अच्छी चीजें होती हैं। ऐसे दृढ़

बैरागी को, वह भगवा वस्त्र न पहने तब तक 'संत' न कहा जाय तो क्या अन्तर पड़ता है।

स्वराज्य मिलने के बाद के दो चार वर्षों में 'धर्मयुग' में हमारे नेताओं को तस्वीरें आमने सामने दो कतारों में छपी थीं, और इसका शीर्षक था 'तब और अब', एक ओर नेताओं की स्वराज्य से पहले की तस्वीर और दूसरी ओर स्वराज्य मिलने के बाद की अर्थात सत्ता प्राप्त होने के बाद की तस्वीर। एक ही नेता की दो तस्वीरों के बीच का अन्तर इतना स्पष्ट दिखता था कि क्षण भर को आश्चर्य हो जाता था। पोशाक बदल गयी, गाल के गड्ढे भर गये, मुख पर खुमारी और सत्ता-प्राप्ति का सन्तोष झलकता था। मुझे ठीक ठीक याद है कि सरदार की दो तस्वीरों में, उम्र के अलावा दूसरा कोई भी अन्तर नहीं मिला था। वही पहनावा, वही खुमारी, वही मुद्रा। बाकी आदमी को तनिक छोटा सा ओहदा भी मिल जाय तब उसकी सूरत कैसी बदल जाती है यह हमने देखा है।

अपने भाषण के अन्त में मैंने सरदार को दम्भमुक्त गांधी भक्तों में शीर्षस्थ स्थान पर बैठे व्यक्ति के रूप में परिचित कराया था। गांधीजी के मापदण्ड से मूल्यांकन करें तो वे अनेक बातों में अपर्याप्त हैं। ऐसा उन्होंने प्रगट रूप से कहा था। उनकी अपनी अहिंसा भी गांधीजी की अहिंसा के दर्जे तक नहीं पहुँची यह बात भी उन्होंने बारम्बार जाहिर की। उनकी अपनी सफलताएँ भी गांधी की प्रशिक्षण की ही आभारी हैं, यह भी उन्होंने बारम्बार स्पष्ट रूप से, बिना कोरकसर, खुले आम कहा। गांधीजी की इच्छा को उन्होंने हुक्म मान कर शिरोधार्य किया। गांधीजी ने उन्हें 'सरदार' कहा पर स्वयं उन्होंने तो गांधीजी के सैनिक के रूप में ही अपना कर्तव्य निभाया। इतिहास ने अनेक अभिकर्त्ताओं को हमारी स्थायी स्मृति में अंकित किया है पर किसी अभिकर्ता के जीवन में, निर्दम्भपना, कर्तव्य-परायणता, त्याग, वैराग्य और निरपवाद अनुशासन-

बद्धता इतनी मात्रा में प्रगट हुए हों ऐसा नहीं देखा गया है। वेद की एक ऋचा में प्रार्थना की गयी है : 'हमारा जीवन और हमारी चाल सीधी हो'। ऐसा कब हो सकता है ? दम्भ रहित जीवन रीति के बिना यह सम्भव नहीं है। सरदार जीवन भर सीधे तनकर खड़े रह सके इसका कारण ही यह था कि उनके खाने के और दिखाने के दाँत भिन्न नहीं थे। मार्क्सवादियों ने सरदार को पूँजीवादी या प्रतिक्रियावादी माना है। सरदार के पास अपनी कह सके ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं थी, न कोई पूँजी ही थी। अपरिग्रह और सादगी उनके जीवन में सहज ढंग से गांधीजी के संस्पर्श से प्रगट हुए थे। ऐसी सादगी का भी उनके मन पर कोई भार नहीं था।

उपसंहार

इतनी प्रशंसा वितरण के बाद इतना कहूँगा कि सरदार भी आखिर आदमी थे। कोई देहधारी, कितना ही महान् क्यों न हो तो भी, कितनी ही कमियों से मुक्त नहीं हो सकता। सरदार के लिये भी यह लागू होता है। उनके अवसान के बाद स्व० राजाजी, स्व० जयप्रकाश जी और स्व० कृपलानी जी ने सरदार के संबंध में जो आदर भाव प्रगट किया वह स्वयं सूचक है। याद रहे कि ये तीनों महानुभाव सरदार के जीवन-काल के दरमियान एक या दूसरे कारण से उनसे नाखुश थे।

ऐसे सरदार को आनेवाली पीढ़ियाँ किस रूप में याद करेंगी ? 'दी हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित कार्टून याद आता है। कक्षा में श्यामपट पर शिक्षक शीर्षक लिखता है : 'सरदार पटेल' और बेंच पर बैठा लड़का अपने पास बैठे लड़के से कहता है : 'क्रिकेटर बृजेश पटेल के फादर।' यह तो हुई मजाक की बात।

भारत की भावी प्रजा सरदार को नहीं भूल सकेगी। आज सात मार्च है। आज ही के दिन सरदार पहली बार पकड़े गये थे। सृष्टि

पर सतत चल रहे रचना कार्य में काल देवता कहीं भी अपने हस्ताक्षर में कुछ भी नहीं लिखते। उनका कार्य तो उनके पसन्द के अनेक पात्रों द्वारा, निमित्तों द्वारा चलता रहता है। सरदारश्री के निमित्त से भारत की एकता और अखण्डता का सांगोपांग संवर्धन हुआ। देश पर सरदार का जो ऋण है उसकी याद कर लें और इतिहास बनाने वाले इस महा-पुरुष का अभिवन्दन करें। आने वाली पीढ़ियां उन्हें 'इतिहास के शिल्पी' के रूप में याद करेंगी। सरदार माने सरदार माने सरदार।



'मैं एक बार साधु होने वाला था' ऐसा वल्लभ भाई मुझसे कहते थे। वे सच्चे साधु हो सकते थे इसमें मुझे शंका नहीं है, बल्कि वे समझ-बूझ कर अनेक साधुओं का पाखण्ड देखकर, साधु होते रुक गये होंगे··· ····वीर योद्धा हैं अतः वीरोचित क्षमा उनमें भरी है। पर सत्याग्रही की शून्यता के आदर्श से वे दूर हैं—इस प्रकार के व्यवहार में वल्लभभाई की उदारता आश्चर्यजनक है। विरोधी की ओर तो उदार हैं ही, पर शत्रुता कर बैठने वालों की ओर भी उनकी उदारता है···सुखी जीवन बिताया पर असुविधा सहन करने की शक्ति में शायद वे अनेक लोक नेताओं से ऊपर हैं····उनके विनोद में कभी-कभी दग्ध कर देने वाली चिनगारियाँ उड़ती हैं, तो कभी ताज़गी देने वाली झीनी फुहार भी पड़ती है।

—महादेव देसाई

सरदार वल्लभभाई राष्ट्र पुरुष हैं। हिन्दुस्तान में यदि किसानों का राज्य हो तो वल्लभभाई किसानों के राजा हैं····उन्होंने रागद्वेष का त्याग नहीं किया है, पर किसी योगी को शोभा दे इस ढंग से रागद्वेष पर काबू प्राप्त किया है। उनका यह योग साधु सन्तों का नहीं है, पर क्षेत्रीय वीर का है। उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, पर वह परलोक में काम आने वाले मोक्ष के लिये नहीं, पर अपने तीस करोड़ भाई बहनों को परतन्त्रता के नरक में से ऐहिक मोक्ष दिलाने के वास्ते। आज वल्लभ भाई के पास रहने को घर नहीं है, ऐशो-आराम के गाड़ी घोड़े, साज-सज्जा, या कपड़े भी नहीं है, जिसे वे अपना कह सकें ऐसा निजी समय भी नहीं है—कौन कहता है वल्लभभाई सरदार नहीं है ? बारडोली के भाषणों में जो जीवन्त सरस्वती प्रवाहित थी, वीर, करुण, हास्य आदि सभी रस जिसमें प्रवाहित थे, ऐसी भाषा कोई चँवरधारी साक्षर लिख या बोल कर तो दिखाये ?—गान्धीजी के सिद्धान्तों की व्यावहारिक आवृत्ति करने में वल्लभ भाई द्वारा प्रगट की गयी कुशलता देखकर बहुतों को लगता था कि, गान्धीजी यदि वल्लभ भाई की मार्फत सब काम लें तो प्रजा जल्दी समझ जायगी।

—काका कालेलकर

'वीर वल्लभ भाई', लेखक महादेव देसाई

(सरदार पटेल यूनिवर्सिटी)

पराधै दी,
ह्दी सीमा ऐ।
सूरत लभदी नेईं,
ी, केह् किश हून करना ऐ।

रदार हा,
ा आधार बना।
छत्तर-छाया अंदर,
बड़ा एह्दा आकार बना।

ह् बेहोश होई,
ओह्दे सुखने हे।